अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-24, 1-15 अगस्त, 2017

गिरिराज किशोर का उपन्यास 'बा'

'बा-बापू : 150'

"सर्वोदय संकुचित राजनीति को खत्म करना चाहता है और उसकी जगह पर व्यापक राजनीति की स्थापना करना चाहता है। इसीलिए ही सर्वोदय स्वयं सत्ता की और पक्ष-विपक्ष की राजनीति से अल्पित रहना चाहता है। वह लोकनीति को ही आगे बढ़ाने की सातत्यपूर्वक कोशिश करता रहता है–सत्ता एक के बाद एक लोगों के हाथों में आती जायेगी। सरकार हमेशा परदे के पीछे ही रहेगी और उसकी जगह लोक-सत्ता प्रवेश करेगी। कर्तृत्व की लगाम लोगों के हाथ में आयेगी। लोग उसके उपयोग की इच्छा और शक्ति दोनों बता सकेंगे। इसके लिए ही हम लोग लोकशक्ति जगाना चाहते हैं, और लोगों को कहते हैं–अरे भाई आपका नसीब आपके ही हाथों में है।"

–विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 24, 1-15 अगस्त, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. स्वतंत्रता से लोकस्वराज्य की... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. व्यापक राजनीति है लोकनीति... 6
4. करो या मरो... 9
5. परमाणु संयंत्र भी तो तैरते हुए बम... 12
6. रवीन्द्रनाथ का स्कूल : आनंदधाम... 13
7. 'बा'... 15
8. तस्वीरें बोलती हैं... 19
9. कविताएं... 20

संपादकीय

स्वतंत्रता से लोक स्वराज्य की ओर

सन् 1947 में 15 अगस्त को जो स्वतंत्रता मिली थी, वह केवल ब्रिटिश शासन की औपनिवेशिक गुलामी से स्वतंत्रता थी। बिना इस स्वतंत्रता के हम स्वतंत्र देश के स्वतंत्र नागरिक के अधिकार को हासिल नहीं कर सकते थे।

लेकिन यह स्वतंत्रता, एक लंबी यात्रा का पहला आवश्यक पड़ाव था। ब्रिटिश औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त होकर हमें लोक-स्वराज्य तक जाना था। नागरिक अधिकारों का तथा लोकतंत्र का एक ढांचा तो बना, परंतु राष्ट्र के अंतिम व्यक्ति अपनी गरिमा के साथ अधिकार सम्पन्न कैसे होगा, तथा उसकी भागीदारी कैसे सुनिश्चित होगी, इस दिशा में हमारी प्रगति बहुत धीमी रही।

स्वतंत्रता के ऊषा-काल में हमारे समक्ष तीन प्रमुख चुनौतियां थीं। एक, नये राष्ट्र-निर्माण में राष्ट्रीय एकता की; दूसरे, लोक भागीदारी के साथ आर्थिक प्रगति की तथा तीसरे, लोकतंत्र को लोक स्तर पर जीवंत बनाने की।

राष्ट्रीय एकता की चुनौती दो कारणों से महत्त्वपूर्ण थी। एक तो भारत का विभाजन साम्प्रदायिक आधार पर होने के कारण उसका जख्म सामूहिक चेतना पर था, तथा दूसरे भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र, लिंग आदि की विविधता/वैभिन्न समाज में मौजूद थे। इन विभिन्नताओं व अस्मिताओं को एक उच्चतर चेतना के अंतर्गत एकत्व के भाव से भरना था। एकत्व की भावना का अर्थ एकरूपता नहीं है। हमने आर्थिक एवं राजनीतिक मोर्चे पर एकरूपता की ओर बढ़ने का प्रयास किया, किन्तु भिन्न-भिन्न अस्मिताओं के बीच एकत्व की भावना की ओर बढ़ने में हम कमजोर साबित हुए। सम्प्रदाय आधारित, जाति-आधारित, भाषा आधारित तथा क्षेत्र आधारित वोट बैंक बनाने की राजनीति ने इसमें सबसे बड़ा नुकसान पहुंचाया।

लोक भागीदारी के साथ आर्थिक प्रगति का रास्ता चुनने में हम पूर्णतः विफल रहे। आधे-अधूरे तथा खामियों से भरे भूमि सुधार कानूनों को लागू करने के कारण गांव स्तर पर श्रमिक, कृषक, नये गांव का निर्माण करने के आधार नहीं बने। बड़े स्तर के तथा उच्च-मध्यम स्तर के भू-स्वामियों का वर्चस्व नई ग्रामीण संरचना में स्थापित होता चला गया। फलस्वरूप ग्रामीण स्तर पर सत्ता का संकेन्द्रण इन्हीं के हाथों में सीमित हो गया। लोक-स्तर से एक नयी आर्थिक संरचना के निर्माण की संभावना धूमिल हो गयी। औद्योगिक विकास में ग्राम स्तर पर पूंजी निर्माण इसलिए बहुत कम हो गयी क्योंकि गांव के संसाधन धीरे-धीरे गांव वालों के नियंत्रण से बाहर होते चले गये तथा केन्द्रीकृत पूंजी के शोषण के दायरे में आ गये। राजसत्ता द्वारा एक सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) का निर्माण किया गया, जो पूर्णतः राजसत्ता के नियंत्रण में था। किन्तु यह पब्लिक सेक्टर भी पीपुल सेक्टर (लोक केन्द्रित क्षेत्र) के निर्माण में कभी मददगार नहीं हुआ। उलटे यह लोक के विस्थापन तथा लोक आधारित संरचना को कमजोर करने का माध्यम बनता चला गया। इसी कारण जब राज सत्ता नियंत्रित सार्वजनिक क्षेत्र का दायरा छोटा किया जाने लगा तो उसका स्थान कारपोरेट सेक्टर ने कब्जे में ले लिया। लोक आधारित क्षेत्र की संभावना और धूमिल हो गयी।

लोकतंत्र को लोक स्तर पर जीवंत बनाने का अभियान लोक स्तर से ही खड़ा करना होगा। अभी का ढांचा तो ऐसा है, जिसमें लोग वोट देते हैं। वोट के आधार पर प्रतिनिधियों का चुनाव होता है तथा प्रतिनिधियों के बहुमत के आधार पर सरकार का निर्माण होता है। किन्तु सरकारें अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए नौकरशाही पर निर्भर करती हैं। अर्थात् लोक स्तर पर नीतियों के निर्माण तथा उनके क्रियान्वयन में लोगों की कोई भागीदारी नहीं होती। जब लोगों की सक्रिय भागीदारी का अपना कोई दायरा नहीं होता, तो वे प्रतिनिधि को अपना सेवक नहीं समझ पाते, न ही उन पर कोई प्रभावी नियंत्रण रख पाते हैं। जन-प्रतिनिधि सत्ता प्रतिष्ठान का एक अंग हो जाता है, तथा लोक प्रतिष्ठान के निर्माण में उसकी कोई रुचि या भूमिका नहीं रहती। इसी कारण यह लोकतंत्र, लोक-स्तर पर जीवंत भागीदारी को आगे बढ़ाने में विफल रहा है। स्वतंत्रता दिवस को मनाते समय हमें यही सुनिश्चित करना होगा कि हम लोक स्वराज्य की ओर कैसे बढ़ें।

बिमल कुमार

अहिंसा की ताकत

❑ महात्मा गांधी

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या मैं वही आदमी हूं जो 1920 में था या मुझमें कोई परिवर्तन हुआ है? मैं आज भी वही हूं जो 1920 में था! फर्क सिर्फ इतना ही है कि कई बातों में 1920 की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ हो गया हूं। कुछ ऐसे लोग हैं जो शायद कहें कि मैं आज एक बात कहता हूं कि और कल दूसरी। लेकिन मैं आपसे कहूंगा कि मुझमें कोई तब्दीली नहीं आयी है। मैं अहिंसा के सिद्धांत पर उसी तरह जमा हुआ हूं जैसा कि पहले था।

ऐसे लोग भी हैं जिनके दिलों में अंग्रेजों के लिए घृणा है। मैंने लोगों को कहते सुना है कि उन्हें अब वे बिलकुल ही नहीं सुहाते। आम लोगों का दिमाग अंग्रेजी सरकार और अंग्रेज लोगों में भेद नहीं करता। उनकी समझ में तो दोनों एक ही हैं। ऐसे समय में, जब कि मैं अपने जीवन का सबसे बड़ा संघर्ष छेड़ने वाला हूं, मेरे दिल में अंग्रेजों के लिए कोई घृणा नहीं है। मेरे दिल में ऐसा खयाल बिलकुल नहीं है कि चूंकि वे मुश्किल में फंसे हुए हैं, इसलिए मैं उन्हें धक्का दे दूं। ऐसा खयाल मेरे दिल में कभी नहीं रहा। हो सकता है कि वे गुस्से में आकर कभी ऐसी बात कर बैठें जिससे कि आपको तैश आ जाये। फिर भी आपके लिए यह ठीक नहीं होगा कि आप हिंसा पर उतर आयें और अहिंसा को बदनाम करें। जब ऐसी बात होगी तब समझ लीजिए कि मैं जहां भी होऊं, आप मुझे जिन्दा नहीं पायेंगे। मेरे खून का पाप आपके सिर पर होगा।

कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक-1940 : यह बात मेरे मन को बराबर बहुत कचोटती रही है कि आज मैं कार्यसमिति से सर्वथा भिन्न मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता हूं। आप सत्ता हथियाना चाहेंगे। उसे प्राप्त करने के लिए आपको कुछ चीजें छोड़नी पड़ेंगी। आपको अन्य दलों के समान बनना पड़ेगा। आपको उनके तौर-तरीके अपनाने को मजबूर होना पड़ेगा। हो सकता है, आप और दलों से आगे निकल जायें। यह तस्वीर मेरे मन को वितृष्णा से भर देती है। मैं 'सत्ता हथियाना' इस मुहावरे में विश्वास ही नहीं करता। 'सत्ता हथियाने' जैसी कोई चीज ही नहीं। जनता में निहित सत्ता के अलावा मेरी और कोई सत्ता नहीं है। मैं जनता में निहित सत्ता का प्रतिनिधि-मात्र हूं। जब राजाजी अपने विचार को पल्लवित कर रहे थे, मुझे लगा कि उनके और मेरे दृष्टिकोणों के बीच भेद की चौड़ी खाईं है। उनका खयाल है कि देश-सेवा के हर अवसर का लाभ उठाकर वे सबसे अच्छी तरह देश की सेवा कर सकते हैं। वे इस भ्रम में रहकर खुश हो सकते हैं कि वे अहिंसा की सेवा कर रहे हैं। सत्ता से मुझे भी डर नहीं लगता। किसी-न-किसी दिन हमें उसे संभालना ही पड़ेगा। वाइसराय यहां अपने देश की सेवा करने, उसका हित-साधन करने के लिए हैं और इसलिए वे भारत के तमाम शक्ति-साधनों का उपयोग बेरहमी से करेंगे। यदि हम युद्ध-प्रयत्न में शरीक होंगे तो ब्रिटेन के हारने पर भी, अंत में हम हिंसा का कुछ पाठ सीख ही चुके होंगे। इससे हमें कुछ अनुभव मिलेगा, जैसा सिपाही को प्राप्त रहता है वैसा कुछ अधिकार भी मिलगा, पर यह सब हमें स्वतंत्रता की कीमत पर हासिल होगा। मुझे यह चीज जंचती नहीं है। अगर हम अहिंसक रहते हैं तो मुझे मालूम है कि परिस्थिति का सामना कैसे किया जा सकता है। हमारी जनता के एक बहुत बड़े भाग में हिंसा की वृत्ति थी, लेकिन उसे अहिंसा सिखायी गयी। अब आपको उसे हिंसा की शिक्षा देनी होगी। लोगों के मन में उलझन पैदा हो गयी है। इस वातावरण में मैं आपका मार्गदर्शन नहीं कर सकता। मैं जो-कुछ कहूंगा उससे आपको परेशानी होगी।

मैंने वाइसराय को बताया कि अगर ब्रिटेन सफल हुआ तो वह मुसोलिनी और हिटलर से बेहतर नहीं रह जायेगा। अगर हिटलर के साथ शांति का समझौता किया गया तो सभी शक्तियां भारत का शोषण करेंगी। लेकिन अगर हम अहिंसक रहते हैं और जापान हमारे देश में घुस आता है तो हम इसका ध्यान रखेंगे कि हमारी इच्छा के बिना जापानियों को कुछ भी न मिल सके। 20 वर्षों के दौरान अहिंसा ने चमत्कार कर दिखाये हैं। हिंसा के जोर पर हम ऐसा कुछ नहीं कर सकते...

जवाहरलाल नेहरू : यह प्रश्न गांधीजी ने विश्व के संदर्भ में उठाया था। वे दुनिया के सामने अहिंसा का संदेश रखना चाहते थे।

ठीक-ठीक विश्व के संदर्भ में नहीं। मेरे मन में तात्कालिक समस्या का विचार था। मेरे सामने दुनिया की तस्वीर नहीं, बल्कि भारत, सिर्फ भारत था! जो स्थिति कार्यसमिति ने अपनायी है उसमें वह ब्रिटिश सरकार को सहायता देने और सेना तैयार करने को स्वतंत्र है। उसे पदग्रहण करने की छूट है। वाइसराय का विचार था कि प्रस्ताव उनके पक्ष में था। उन्होंने कहा : ''आप भारत की रक्षा करना चाहते हैं। आप हवाई जहाज, युद्ध-पोत, टैंक आदि चाहते हैं, हम आपको यह सब देंगे। इससे मेरा और आपका भी प्रयोजन सिद्ध होगा। यह स्वर्ण-अवसर है।

आपको हमारे साथ आकर सब तरह से तैयार और सज्जित हो जाना चाहिए। दबाव पड़ने पर हम दुहरी गति से आगे बढ़ेंगे।''

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी : गांधीजी की राज्य की परिकल्पना में मैं उनका साथ नहीं दे सकता। हमारा संगठन राजनीतिक है, जो अहिंसा के लिए नहीं, एक राजनीतिक उद्देश्य के लिए काम कर रहा है। हम अन्य राजनीतिक दलों की स्पर्धा के बीच काम कर रहे हैं।

जवाहरलाल नेहरू : हिंसा और अहिंसा के बारे में राजाजी को जो समझ है, उससे मैं सहमत हूं। और किसी तरह तो हम राजनीतिक धरातल पर काम ही नहीं कर सकते।

राजाजी ने तो इस विचार को एकदम अस्वीकार कर दिया है कि हम अहिंसक रीति से सत्ता को अपने हाथ में रख सकते हैं। इसका प्रमाण तब भी मिला था, जब कांग्रेस अहिंसक रीति से सत्ता प्राप्त करके पदारूढ़ थी। जिस हद तक मंत्रिमंडलों ने हिंसा से काम लिया उस हद तक वे विफल रहे। उनके कार्य से हमारी अहिंसा का दिवालियापन प्रकट हुआ। शायद हम और कुछ कर भी नहीं सकते थे। मैंने पद छोड़ देने की सलाह दी। लेकिन राजाजी को मेरी यह बात स्वीकार नहीं है कि सिर्फ पुलिस के उपयोग की हद तक हिंसा का सहारा लेकर सत्ता संभाली जा सकती है।

किसी सदस्य ने बड़ी सहजता से कह दिया कि सत्याग्रह का खयाल तो हमें छोड़ ही देना चाहिए। मैंने कभी इसका खयाल नहीं छोड़ा है। ऐसा समय आ सकता है जब हमें सविनय अवज्ञा का सहारा लेना पड़े। लोगों को जबरदस्ती सहयोग करने के लिए मजबूर किया जाये और हम चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें, ऐसी स्थिति की कल्पना मैं तो नहीं कर सकता। यह प्रक्रिया आज चल रही है। फ्रांस के आत्मसमर्पण करने के समय तक यह क्रिया नरमी से चल रही थी और इसका असर उतना ज्यादा महसूस नहीं हो रहा था। अब जबर्दस्ती बेरोक-टोक चलती रहे और मैं चुपचाप या बेफिक्री से बैठा रहूं, ऐसा मैं नहीं सोच सकता। लेकिन क्या हमारे लोग पूर्ण अहिंसा का परिचय दे सकते हैं? दुर्बल की अहिंसा हमें कुछ राहत अवश्य दे सकती है, लेकिन सच्चा आनंद और शक्ति नहीं—उस अहिंसा का सहारा लेने पर हम अंत में चूक जायेंगे। अगर हम आरंभ दुर्बल की अहिंसा से करते हैं और अंत तक, उसी तक सीमित रह जाते हैं तो समझ लीजिए कि हम कहीं के नहीं रह जायेंगे। इसलिए अब कसौटी की घड़ी आने पर आप कहते हैं कि यह असंभव है। आपकी प्रामाणिकता और अपने विश्वास के मुताबिक आचरण करने का आपका साहस पूर्ण सम्मान के योग्य है। लेकिन बरबस ऐसा महसूस हो रहा है कि हमारी अहिंसा का अंत बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण रहा है।

मैं फिर अनुभव और हार्दिक विश्वास के साथ कहता हूं कि अहिंसा के बल पर सत्ता प्राप्त कर सकना संभव है, किन्तु हमें सत्ता हाथ में नहीं लेनी चाहिए। किसी अहिंसक संगठन के लिए पदग्रहण करना मुनासिब नहीं है, लेकिन वह अपने मनोनुकूल काम करवा सकता है। अगर हम अपने लोगों पर अहिंसक रीति से नियंत्रण नहीं रख सकते तो हमारे पास सत्ता इसी रूप में हो सकती है। जवाहरलाल ने अहिंसा में विश्वास रखने वालों के साथ न्याय नहीं किया है। उनका मतलब यह है कि हिंसा का मलिन कार्य दूसरों के सिर छोड़कर, वे खुद ऊंचे लोगों में शुमार होना चाहते हैं। दूसरी ओर, मैं यह मानता हूं कि हम सत्ता बिलकुल हासिल ही न करें। उससे वेतन-भत्ते, यश-कीर्ति और ऐसी चीजें मिलती हैं, जिनकी लोगों को बड़ी अभिलाषा रहती है। जो सत्ता में होते हैं वे अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को अपने मातहत मानते हैं। जब कोई अहिंसक व्यक्ति सत्ता ग्रहण करने से इनकार करता है तो उसका कहना यह होता है कि ''मैं सत्ता को इसलिए अस्वीकार कर रहा हूं कि यदि इसे स्वीकार करूंगा तो सब-कुछ गड़बड़ करके रख दूंगा। मैं इसके लिए बना ही नहीं हूं। इसका श्रेय दूसरों को जाने दीजिए।'' मेरे मन में कभी यह विचार नहीं आया कि जिन लोगों ने सत्ता ग्रहण की है उनसे मैं श्रेष्ठ हूं और न उन्हीं के मन में ऐसी कोई भावना आयी कि वे हीन हैं या उनसे कोई हीन कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। अब मान लीजिए, हिंसा की दुहाई देने वाले अन्य दलों के बीच आप अहिंसा पर दृढ़ रहते हैं तो स्वभावतः आप अल्पमत में होंगे। दूसरों का हृदय-परिवर्तन किये बिना एक छोटे-से अहिंसक समूह को तत्काल सत्ता प्राप्त करने की आशा क्यों करनी चाहिए? दूसरे लोगों को सत्ता में रहने दीजिए। देश को अहिंसा का कायल करने को प्रयत्नशील अहिंसक लोगों का एक छोटा-सा समूह कदापि सत्ता की परवाह नहीं करेगा। आप अपने धर्म पर दृढ़ता से आरूढ़ रहेंगे तो देखेंगे कि आपने अधिसंख्यक लोगों को अपने मत का कायल कर लिया है। जिसमें आत्म-विश्वास है वह पूरे देश को अपने मत का कायल कर लेगा। लेकिन आपका कहना है कि करोड़ों लोग कभी भी उस अवस्था तक नहीं पहुंचेंगे। मुझे तो लगभग निश्चित भरोसा है कि वे पहुंच सकते हैं। आप ऐसी कोई धारणा न बनायें। मैं काफी लंबी और कठिन प्रक्रियाओं से गुजरकर अहिंसक बना। जिस श्रेय का दावा हम अपने लिए करते हैं वह संपूर्ण मानव-जाति को देना अहिंसा का मूल तत्त्व है। मुझे कभी भी नहीं लगा है कि अहिंसा का आचरण अकेले मैं ही कर सकता हूं। इसके विपरीत, मैं तो अपने को साधारण मनुष्य मानता हूं। मैं पूर्णतः आम लोगों में से हूं, और तब भी मैं आम लोगों का नेतृत्व कर सकता हूं। अनपढ़ गुजरातियों के बीच में मैं वीर पुरुष तैयार कर सकता हूं। एक समय वह था जब ये अनपढ़ लोग कहा करते थे, ''हम क्या कर सकते हैं?'' आज वे ही लोग शक्ति के स्वामी हैं! अगर हम हजारों का मत परिवर्तन कर सकते हैं तो लाखों-करोड़ों का भी कर सकते हैं। 1920 में हिन्दू और मुसलमान, दोनों समाजों के आम लोगों ने अहिंसक रीति से काम किया। क्या यह हमारे लिए एक बहुत बड़ी बात नहीं होती कि लोकमत तथा सत्ताधारियों पर हम ऐसा प्रभाव कायम कर लेते जिससे अपनी बात मनवाने के लिए हमें किसी तरह की जबरदस्ती की

जरूरत ही न पड़ती? अहिंसा सहसा सत्तासीन नहीं हो सकती। मैं चंद लोगों को लाभान्वित करने वाले स्वराज्य से संतुष्ट नहीं हूं। वह तो करोड़ों के लिए है। उन सबको उसका एहसास होना चाहिए। हिंसक साधन से प्राप्त स्वराज्य का एहसास उन्हें नहीं हो सकता। हमें निर्णय लेना है।

बहुत-से भारतीय गांव और संस्थाएं अहिंसक व्यवहार कर रही हैं। हम समस्त राष्ट्र का निर्माण करने की कोशिश कर रहे हैं। हमें उसके लिए समय तो देना ही होगा। हिंसा ने दुनिया में क्या कर दिखाया है? मैं समझता हूं, हम अधैर्य के वशीभूत हो गये हैं। अगर हम पदग्रहण नहीं करेंगे तो दूसरे करेंगे। अगर आप सोचते हैं कि आप दूसरों के साथ स्पर्धा में उतरकर देश की सेवा कर सकते हैं तो यह आपकी भूल है। हम लोकतंत्रवादी हैं। हमारे बारे में यही माना जायेगा कि हम जनता की इच्छा से शासन कर रहे हैं। यदि जनता विद्रोह करती है तो हमें सत्ता से हट जाना चाहिए।

...हमने अहिंसा को अपनी शक्ति दिखाने का अवसर नहीं दिया है जो देना चाहिए था। हम सबने, हमसे जहां तक बन सका, किया। अब उससे भी बेहतर कर भारत को कुछ ऐसा दे जायेंगे जिस पर वह गर्व करेगा। मैं चाहूंगा, मेरी तरह आप भी यह मानिये कि सेना के बिना भी राज्य संभाला जा सकता है। अगर कोई मेरे सामने आयेगा तो मैं अहिंसक रीति से उससे निबट लूंगा। हमें ऐसा भय क्यों होना चाहिए कि वे हमें लील लेंगे? हिंसक लोग हिंसक लोगों से ही लड़ते हैं। वे अहिंसक लोगों को नहीं छेड़ते। हम सुदूर भविष्य में होने वाले किसी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए भारी मात्रा में शस्त्रास्त्र जुटाते हैं। देश में जो वैमनस्य-विभेद है उसको देखते हुए भी हमारा अहिंसा पर कायम रहना जरूरी है। हम सारी दुनिया के मुकाबले भी अपने लोगों को शांतिपूर्वक नियंत्रण में रख सकते हैं। हमारी अहिंसा दुर्बल की अहिंसा है। यह बहादुर आदमी की अहिंसा नहीं है। अगर हममें अपने पड़ोसियों के लिए प्रेम हो तो कोई हिन्दू-मुस्लिम दंगा न हो। इन दंगों को रोका जा सकता है। अगर उन्हें रोका जा सकता है तो अन्य प्रकार की अव्यवस्था को भी रोका जा सकता है।

मैं देखता हूं, हमारे बीच भेद की ऐसी निश्चित, चौड़ी खाई है जिसे पाटा नहीं जा सकता। उसे पाटने की कोशिश करना देश की कुसेवा होगी। मुझमें कोई अधीरता, कोई कुढ़न नहीं है। अगर मैं देखता हूं कि मेरा प्रभाव क्षीण हो गया है तो खुद कांग्रेस के ही हित की दृष्टि से मुझे उससे अलग हो जाना चाहिए।

मेरा राजनीति का स्रोत सदा से नैतिकता या धर्म रहा है और मेरी शक्ति का आधार भी यही बात रही है कि मेरी राजनीति का स्रोत नैतिकता रही है। नैतिकता और धर्म की दुहाई देने के कारण ही आज मैं राजनीति में हूं। जिसे अपने देश से प्रेम है उसका राजनीति में जीवंत रुचि लेना अनिवार्य है, अन्यथा वह अपनी वृत्ति का अनुसरण शांतिपूर्वक नहीं कर पायेगा। मैं कांग्रेस में अपने धर्म के साथ आया। वह समय आ गया है जब मुझे आप पर निगाह रखनी चाहिए और देखना चाहिए कि मैं आपको जहां तक आवश्यक हो, अपने साथ ले जा सकता हूं या नहीं।

अतीत में राजाजी को बुद्धि और हृदय, दोनों धरातलों पर अपने साथ ले चलने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन जब यह पद-ग्रहण का सवाल उठा, मैंने देखा कि हमारे विचार विपरीत दिशाओं में जा रहे हैं। देखता हूं, अब मैं उन्हें अपने साथ नहीं चला सकता। इसलिए मुक्ति की मांग करना मेरे लिए परमावश्यक है। आंतरिक कलह-क्लेश एक मामूली चीज है। उन पर हम काफी ध्यान दे चुके हैं। अगर बाहरी आक्रमण के बारे में आप किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते तो आंतरिक कलह-क्लेश के बारे में भी कोई फैसला नहीं कर सकते। मेरी बुद्धि दोनों में बहुत भेद नहीं करती। प्रस्ताव में 'अपना मन पूर्वग्रह-मुक्त रखने' की बात मैंने जान-बूझकर कही है। आपने कहा है कि हम अहिंसक साधनों के सहारे सत्तारूढ़ हो सकते हैं, लेकिन सेना की सहायता बिना उस सत्ता को कायम रखने और सुदृढ़ करने के बारे में आपको शंका है। यदि हममें एक राष्ट्र के रूप में पर्याप्त अहिंसा नहीं है, या दूसरे शब्दों में, अगर हम राजनीति में अहिंसा को लागू नहीं करते तो मेरे मन में जिन छोटे-से पुलिस-बल की बात है वह आंतरिक अव्यवस्था का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। अहिंसा की कार्य-पद्धति हिंसा की कार्य-पद्धति से भिन्न है। सवाल करोड़ों लोगों का है। 20 साल में तो सैनिक कार्यक्रम भी पूरा नहीं हो पाता। इसलिए हमें धीरज से काम लेना चाहिए। अगर आम लोग अहिंसा से स्वराज्य हासिल कर लेंगे तो वे अहिंसा के बल पर उसे कायम भी रख सकेंगे।

देश के लिए बीस वर्ष का समय कुछ नहीं होता। हमारी हिंसा सत्ता प्राप्त करने तक सीमित थी। ब्रिटेन के खिलाफ हम सफल रहे हैं। लेकिन अपने ही लोगों के मुकाबले विफल हो गये। कई स्थानों में कांग्रेसजनों और कांग्रेस समितियों द्वारा हिंसक प्रदर्शन किये गये हैं। यही हमारी कठिनाइयों और मेरे इस आग्रह का कारण है कि हमें अहिंसा का विकास करना है। और यही वह अवसर है, अन्यथा हम कुछ नहीं कर पायेंगे। राजाजी का यह कहना सही है कि अगर मैं यह समझता हूं कि कांग्रेस मेरे साथ है, तो यह मेरी मूर्खता है। मैंने सोच-समझकर छलांग लगायी है। मुसलमानों के साथ साझेदारी करके मैंने आग के साथ खिलवाड़ किया। हिन्दुओं ने कहा, ''मुसलमान अपने को संगठित कर लेंगे।'' उन्होंने संगठित किया। पर मेरे पास तो पूरे समाज को मापने का एक ही पैमाना है।

आज हमारे सामने आंतरिक तथा बाहरी समस्याओं के मुकाबले के लिए विनाश के हथियारों और अहिंसा के बीच चुनाव का प्रसंग उपस्थित है। हमें चुनाव करना ही है। अगर हमारे सामने कोई और रास्ता है तो हम अहिंसा को अलविदा कह दें। हमारा रवैया तो आज अहिंसा, कल हिंसा वाला हो गया है। हमें नहीं मालूम कि भविष्य में हम क्या

करेंगे। कल की बात छोड़िये और खुद से पूछिए : ''क्या आज हम बंदूकें संभाल सकते हैं?'' मेरा दृष्टि-विस्तार करोड़ों अभावग्रस्त लोगों तक है। अगर मैं कोई गलत कदम उठाऊंगा तो कभी भी अपने को माफ नहीं कर सकूंगा। अगर राजाजी की स्थिति को आज आप नहीं स्वीकार करते तो कल करेंगे। अगर आपने अपने आचरण में अहिंसा को उतार लिया है तो बहुत अच्छी बात है, मैं तो अपनी अहिंसा को अपनी जेब में, अपने हृदय में, अपने मन में रखकर अपने रास्ते जा रहा हूं। मैं अपने लोगों को अपनी राह पर लाने की कोशिश करूंगा और अपना भाग्य आजमाऊंगा। विकल्प-रूप में हमें अपने लोगों को सैनिक प्रशिक्षण देना होगा—लेकिन साम्राज्य की खातिर नहीं, खुद अपनी खातिर। साम्राज्य तो चरमरा रहा है। उसका सूरज तेजी से डूबता जा रहा है। अगर हममें अहिंसा के प्रति आस्था नहीं है तो फिर हम हिंसा के लिए संगठित हों। मैं मानता हूं, हम इसमें विफल रहेंगे। मैं मौलाना साहब की इस बात से सहमत हूं कि आत्म-रक्षा के लिए हिंसा से शुरुआत करने वाले लोग अंत में हमलावर बनते हैं। मैं जनसाधारण के सैनिकीकरण में सहायक नहीं बनना चाहता। अहिंसक सिपाही तिरस्कार का पात्र नहीं बनेगा। वह क्षय रोगी ही क्यों न हो, पर वह अपना जौहर दिखाने में ऊंचे-से-ऊंचे पठान को भी मात दे जायेगा। मैं चाहता हूं, आप राजाजी की स्थिति पर गंभीरता से विचार करके देखें कि क्या आप उसे अपना सकते हैं? न अपना सकते हों तो उन्हें अपनी राह जाने दीजिए। इस समय अहिंसा की हमारी व्याख्याएं अलग-अलग हैं। उन्हें अपने लिए स्थान बनाने का अवसर दीजिए। अगर वे बुरी तरह अल्पमत में हों तब भी उन्हें बहुमत प्राप्त हो गया। उन्हें कार्यसमिति को अपने मत का कायल करने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखना चाहिए, या फिर नये सिरे से ऐसे लोगों की समिति बनानी चाहिए जो अहिंसा की भावना से उस हद तक ओतप्रोत नहीं हैं, जिस हद तक मैंने बताया है। ❑

व्यापक राजनीति है लोकनीति

❑ **विनोबा**

आज दुनिया में एक बड़ा मोह फैला है। वह है—सत्ता-मोह। सज्जन लोग भी यह मानकर चलते हैं कि सत्ता हाथ में आये बिना वे कोई काम ही नहीं कर सकेंगे। या तो ऐसा कहें कि सत्ता की मदद से वे और अधिक काम कर सकेंगे। गांधी विचार पर श्रद्धा रखने वाले जो हैं उनमें से भी कई को ऐसा लगता रहता है। उनको यह भी लगता है कि हम लोगों ने स्वराज्य प्राप्त किया है, और राज्य चलाने की जिम्मेदारी हम लोगों ने अपने कंधे पर नहीं ली, तो फिर स्वराज्य-प्राप्ति का अर्थ ही क्या है। इसलिए राज्य शासन चलाने की जिम्मेदारी वे अपनी मानते हैं।

उनका कहना सही है, ऐसा मान भी लें। लेकिन मेरा कहना है कि गांधी विचार पर श्रद्धा रखने वालों को और थोड़ा गहराई से विचार करना चाहिए। हमने स्वराज्य अवश्य प्राप्त किया। लेकिन गांधी विचार के आधार से ही देखें तो, स्वराज्य इसलिए प्राप्त किया कि वह हाथ में आते ही हमें उस सत्ता का क्षय करने का काम दूसरे क्षण से ही शुरू करना है। पूर्ण रूप से विलय होने में भले 50 साल भी क्यों न लगें! लेकिन उसकी शुरुआत आज से ही होनी चाहिए।

मैं ऐसा मानता हूं कि यही अपना मुख्य विचार है। गांधी विचार पर श्रद्धा रखने वालों के सामने ये ही मुख्य ध्येय है—जनता को जगाना और राज्य का क्षय करते जाना। जनता की शक्ति जगाते जाना और उस आधार से राज्य शक्ति क्षीण करते जाना। इसके बिना हम लोग गांधीजी के कल्पना के समाज को अस्तित्व में नहीं ला सकेंगे। हम लोग सरकारों की सत्ता प्रस्थापित करना चाहते हैं। सर्वोदय के सामने ये ही एक क्रांतिकारी लक्ष्य है। इसे मैंने नाम दिया है 'लोकनीति'। अपनी नजर के सामने सतत यही ध्येय रख करके हम काम करते रहेंगे तो उसे हम अवश्य प्राप्त कर सकेंगे।

सही मायने में हम मानते हैं कि जीवन के अलग-अलग विभाग होते नहीं हैं। जीवन यानी एक अखंडित प्रवाह। उस अर्थ में उसमें राजनीति का भी समावेश तो हो ही जाता है। इसीलिए हम ऐसा नहीं चाहते हैं कि राजनीति को हम अपने चिन्तन के दायरे के बाहर या निस्बत से भी दूर रखें। इससे उलटे, हमें तो राजनीति का उत्तम चिन्तन करना चाहिए। और केवल अपने ही देश की राजनीति का नहीं, बल्कि वैश्विक राजनीति के संबंध में भी चिन्तन-अध्ययन करते रहना जरूरी मानना चाहिए। किन्तु वह साक्षी रूप से ही करना चाहिए। आज की सत्ता की और पक्ष-विपक्ष की राजनीति से दूर रहकर ही वह करना है। इसलिए कि हम आज की राजनीति में मूलभूत रूप से ही बदलाव करना चाह रहे हैं। लोकनीति को लाना हो तो राजनीति को हटाना ही पड़ेगा। यदि अपने को पेड़ काटना है तो क्या उसके ऊपर चढ़कर हम उसे काट सकेंगे? हमें तो मात्र पेड़ की शाखाएं या टहनियां ही नहीं, बल्कि पूरा पेड़ ही, उसकी बुनियाद से उखाड़ कर फेंकना है। राजनीति से दूर रहकर ही हम उसे उखाड़ सकते हैं।

इसमें हम केवल सत्ता की और पक्ष-विपक्ष की संकीर्ण-संकुचित राजनीति से अलिप्त रहते हैं। व्यापक राजनीति से बिलकुल नहीं।

इस अर्थ में लोकनीति यानी एक व्यापक राजनीति ही है। उसका ध्येय है कि आज की यह संकीर्ण राजनीति दूर हटा कर लोगों की राजनीति स्थापित करना। लेकिन, आज नाम तो लोकतंत्र का लिया जाता है, किन्तु प्रत्यक्ष में मात्र वही फटी-पुरानी राजनीति चलती रहती है। मैं ऐसी राजनीति को नाना फडणवीसी राजनीति कहता हूं। उनके जमाने में क्या स्थिति थी? अंग्रेज हमला करने वाले थे। वे बोरघाट तक आ पहुंचे थे। पुणे में पेशवा अपने साथीदारों को लेकर तैयार थे। पेशवा ने तो पुणे का रूपांतर दावानल में, अग्नि-प्रलय में करने की तैयार कर ली थी। और इधर बातचीत क्या चल रही थी? ''शिंदे कितनी सेना लेकर आयेगा—भोसले कितने सैनिक लायेगा, होलकर कितना सैन्य ला सकेगा, हम इतना-इतना लश्कर लाये तो उसके बदले में हमें क्या मिलने वाला है?'' ''जवाब मिलता था—खानदेश का अमुक-अमुक हिस्सा दे देंगे आपको।''

''हम इतनी-इतनी सेना लाये थे, उसके बदले में हमें क्या मिलेगा?'' तो जवाब मिलता था ''अमुक-अमुक विस्तार दे देंगे आपको।''

बिलकुल वैसा ही आजकल भी चल रहा है। नाना फडणवीस के जमाने में जो चलता था, वैसी ही राजनीति आज भी चलती है।

''हमारे इतने-इतने सदस्य हैं, प्रांत में या केन्द्र में। हमें प्रधानमंडल में कितनी सीटें मिलेगी? कौन-कौन से विभाग-मंत्रालय मिलेंगे?''

मैं आपसे पूछना चाहता हूं—नाना फडणवीस के जमाने की राजनीति से भिन्न ऐसा आज की राजनीति में क्या चल रहा है? सर्वोदय ऐसी संकुचित राजनीति को खत्म करना चाहता है और उसकी जगह पर व्यापक राजनीति की स्थापना करना चाहता है। इसीलिए ही सर्वोदय स्वयं सत्ता की और पक्ष-विपक्ष की राजनीति से अल्पित रहना चाहता है। वह लोकनीति को ही आगे बढ़ाने की सातत्यपूर्वक कोशिश करता रहता है—सत्ता एक के बाद एक लोगों के हाथों में आती जायेगी। सरकार हमेशा परदे के पीछे ही रहेगी और उसकी जगह लोक-सत्ता प्रवेश करेगी। कर्तृत्व की लगाम लोगों के हाथ में आयेगी। लोग उसके उपयोग की इच्छा और शक्ति दोनों बता सकेंगे। इसके लिए ही हम लोग लोकशक्ति जगाना चाहते हैं, और लोगों को कहते हैं—अरे भाई आपका नसीब आपके ही हाथों में है।

मेरी साफ-साफ राय है कि गांधीजी की दृष्टि से ये ही सच्ची राजनीति है। गांधीजी ने भी स्वयं जीवन भर ऐसी ही व्यापक राजनीति के लिए, यानी लोकनीति के लिए काम किया। लेकिन सत्ता के मोह के कारण गांधीजी के जीवन के बारे में गलत मूल्यांकन किया गया। इसलिए उनके विचारों का सही-सही स्वरूप तुरंत ध्यान में नहीं आ सका।

जरा सोचिए तो सही। स्वराज हासिल हुआ तो मुहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल बन गये थे। गांधीजी को यदि भारत का गवर्नर जनरल बनना होता तो उन्हें कोई रोक सकता था क्या? लेकिन उन्होंने नोआखाली की राह पकड़ी। जब दिल्ली में स्वतंत्रता का महोत्सव मनाया जा रहा था, उस समय पुलिस या लश्कर की सुरक्षा के बिना ही उस कलकत्ता में साम्प्रदायिक दावानल बुझाने के लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा रहे थे। उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के बाद वाईसराय भवन का रूपांतर अस्पताल में करने का सुझाव दिया था। ये सब लक्षण राजनीति वाले के माने जायेंगे क्या? इसलिए उनके संबंध में जो गलत आकलन कुछ लोगों के दिमाग में घर कर गया है, उसे हटाने की जरूरत है। गांधीजी राजनीति के पीछे कभी थे ही नहीं। जीवन भर उनकी अखंड साधना लोकनीति के लिए ही थी।

यदि गांधीजी को राजनीति ही चलाने की इच्छा रहती तो आखिर में कांग्रेस को लोक सेवक संघ में रूपांतर कर देने की सलाह वे भला क्यों देते? स्वयं के मारे जाने से एक दिन पहले वे लिखकर गये थे : कांग्रेस का स्वराज्य-प्राप्ति का काम अब पूरा हुआ है। अब उसे अपने को आम जनता की सेवा में जुटा देना चाहिए। और एक राजनीतिक पक्ष के रूप में उसका विलय करके उसका रूपांतर लोक सेवक संघ में कर देना चाहिए। कांग्रेस के लिए यह उनका आदेश था, उनका वसीयतनामा था। उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि कांग्रेस ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। लेकिन देश की सामान्य जनता के लिए आर्थिक, सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त होना अभी बाकी है। इस काम को पूरा करने के लिए सभी पक्ष और पंथों से मुक्त ऐसा एक संगठन होगा और वह गांव-गांव को स्वावलंबी बनाने के वास्ते कटिबद्ध होगा। गांधीजी जनता को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। और कांग्रेस की शक्ति को इस काम की तरफ मोड़ना चाहते थे।

किन्तु राजनीति वालों को उनकी यह सलाह रास नहीं आयी। उन्हें गांधीजी की यह सलाह एकदम निरर्थक, असंगत मालूम हुई। विचित्र लगी। और वह तो स्वाभाविक ही था। गांधीजी की वह राय पूरे तौर पर राजनीति के बिलकुल उलटी दिशा की ओर से जाने वाली थी। लेकिन सही माने में देखें तो वह अति दिव्य, विशाल और भव्य कल्पना थी। एक अत्यन्त श्रेष्ठ कल्पना थी। उस सुझाव में गांधीजी की प्रतिभा की चमक दिखायी देती थी। मैं जब-जब इस कल्पना के विषय में सोचता हूं तो ऐसा ध्यान में आता है कि वह एक उपनिषद-तुल्य दर्शन था। अनोखी प्रतिभा के बिना ऐसी कल्पना सूझना भी नामुमकिन है। अशक्य है।

गांधीजी की वह सलाह मानकर यदि लोक सेवक संघ बना होता तो सारे देश पर उसका एक अच्छा प्रभाव पड़ता। जनता को उचित दिशा में ले जाने, निष्काम और निष्पक्ष भाव से जनता की सेवा करने, उचित

मार्गदर्शन करने के वास्ते एक नैतिक शक्ति देश में खड़ी होती। और महत्त्व की बात यह होती कि देश में सेवा संस्था मुख्य मानी जाती और राज चलाने वाली सत्ता-संस्था गौण हो जाती।

गांधीजी के जमाने में कांग्रेस राष्ट्रीय एकीकरण परिषद की तरह थी। उससे राष्ट्रीय एकजुट का बहुत बड़ा कम होता था। गांधीजी उसी कांग्रेस को स्वराज्य-प्राप्ति के बाद एक सत्ता संस्था के नाते टिकाने की ऐवज में एक देशव्यापी, सबसे बड़ी सेवा संस्था बनाना चाहते थे। कारण था कि वे सरकार की शक्ति को गौण और जनता की शक्ति को मुख्य मानते थे। यदि आप लोक सेवक बनोगे तो सत्ता धारण करने वालों पर आपका प्रभाव पड़ेगा। सत्ता का स्थान दूसरे नंबर पर होगा, पहला नहीं। पहला लोक सेवक होगा। सेवा रानी होगी और सत्ता उसकी दासी।

परंतु इतनी प्रचंड कल्पना हजम करने के लायक चित्त उस समय अपने पास नहीं था। शायद आज भी वह अपने पास नहीं है। इसका क्या परिणाम देश पर हुआ वह तो हमने देख लिया है। आज स्थिति ऐसी है कि देश में कोई नैतिक आवाज है ही नहीं। भिन्न-भिन्न राजनीतिक नेता जनता के सामने एक दूजे के मुद्दे का खंडन करते रहे हैं। बड़ी-बड़ी गर्जना करते हैं। निष्क्रिय जनता में उसके कारण किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता बनती नहीं। जिसे हम नैतिक नेतृत्व कह सकें, इसका देश में आज बिलकुल अभाव है। इसके कारण देश में एक तरह की निष्क्रियता, शून्यता और रिक्तता फैली है। जनता कशमकश में पड़ी है। कहां जायें, क्या करें—यह उसके ध्यान में ही नहीं आ रहा है। देश में आज सत्ता संस्था मुख्य बनी है, सब ओर उसका ही बोलबाला है। छोटी-छोटी सेवा संस्थाएं भी सरकार की आश्रित बनकर काम चलाती हैं! और कांग्रेस का नाम जो एक समय में बहुत प्रभावी था, वह भी अभी क्षीण हो गया है।

ध्यान में लेने लायक बात यह है कि यदि गांधीजी की उस सलाह को माना गया होता तो ऐसे दिन आते नहीं! गांधीजी की अपेक्षा के अनुसार राजनीति को हम अपनी जीवन निष्ठा के द्वारा प्रभावित कर सके होते। राजनीति को लोकनीति में परिवर्तित कर सके होते।

गांधीजी की राजनीति भिन्न प्रकार की है—यह बात यदि गांधी विचार पर श्रद्धा रखने वालों ने भी ठीक तरह से समझ ली होती तो वे भी राजनीति के उस प्रवाह में बह नहीं जाते और लोकनीति के लिए सतत प्रयत्नशील रहे होते। उनमें से कितनों को यह लगा कि गांधीजी राजनीति से दूर रहे, लेकिन हम भला कैसे दूर रह सकते हैं, सत्ता के द्वारा सेवा करना—यह भी अपना कर्तव्य ही तो है। लेकिन समझने की बात यह थी कि उसमें अलिप्त रहने की बात नहीं थी। हम सब जिस लोकनीति की बात कर रहे हैं, वह अभावात्मक नहीं है। उदाहरण के लिए, कोई संस्था या संगठन अ-राजनीतिक माना जाता है, उस अर्थ में हम सब अ-राजनीतिक नहीं हैं। जैसे, अस्पताल अ-राजनीतिक होगा। उसका एकमात्र उद्देश्य होता है कि बीमारों की सेवा करना। किन्तु अपना उद्देश्य केवल सेवा करना ही नहीं है। उलटे, आज जो राजनीति चल रही है, उसे तोड़ने का काम अपना है। अपने को सत्ता की ओर पक्ष-विपक्ष की राजनीति को तोड़ना है। मतलब, हम भी व्यापक अर्थ में राजनीति में ही हैं। सत्ता की और पक्ष-विपक्ष की राजनीति को खतम करने के लिए ही हम उससे अलिप्त रहकर लोकनीति की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

इस तरह, गांधी विचार में श्रद्धा रखने वालों के सामने आज मुख्य ध्येय है, जनता को जाग्रत करना और राज-शक्ति को क्षीण करते जाना। यहां इस बात का भी उल्लेख करना चाहिए कि राज्य क्षीण होना चाहिए—यह बात साम्यवादी लोग भी करते हैं। उनका भी अंतिम आदर्श है : आखिर में राज्य क्षीण होकर के गिर पड़ेगा—जैसे कोई पका फल। यानी राज्य का विलय होना जरूरी है, ऐसा वे भी मानते हैं। लेकिन वे ऐसा कहते हैं कि यह तो अंतिम अवस्था की बात हुई। लेकिन आज की घड़ी में, आज की परिस्थिति में, इस बीच वाली स्थिति में राज्य-सत्ता को जहां तक बने, वहां तक मजबूत करने की जरूरत है। और उसके आधार से जो भी विरोधी शक्तियां हैं, उन्हें नष्ट करके बाद में ही राज्य क्षीण हो पायेगा। यानी साम्यवाद के तत्त्वज्ञान में राज्य-सत्ता मजबूत होनी चाहिए यह है 'रोकड़' बात, और राज्य शक्ति का विलय यह बात है 'उधार'! यह उधारी कब वसूल होगी, या होगी भी या नहीं, यह वे अभी तो बता नहीं सकते हैं।

साम्यवादियों की इस भूमिका के क्या-क्या परिणाम हुए, यह सब हमने देख लिया है। बीच की स्थिति, बीच की स्थिति कहते-कहते रूस में तो राज्य-सत्ता की पकड़ इतनी जोरदार, मजबूत बैठी कि उसका रूपांतर तानाशाही में हुआ। इसीलिए अपने को तो यह तय करना चाहिए, पक्का करना चाहिए कि जो भी करना है, उसकी शुरुआत आज से ही करना है। राज्य-सत्ता को आज के आज ही हम नष्ट नहीं कर सके तो भी उसे आज से ही कम-कम करते जाना है। राज्य-क्षय की प्रक्रिया आज से ही शुरू करनी चाहिए। और ऐसे होते-होते वह संपूर्ण रूप से जब समाप्त होगी, तब होगी।

इतना सब कहने का सार यह है कि गांधीजी की राजनीति यानी राज्य का क्षय करने की ही राजनीति। लोगों को हम यह कहते रहेंगे कि आपकी तकदीर आपके ही हाथ में है। इसी संदर्भ में ही हम लोग विकेन्द्रीकरण और ग्रामस्वराज्य की बात करते रहते हैं। आत्मनिर्भर गांव-निर्माण कर जनता की शक्ति जगाते जाने से ही अंततोगत्वा हम राज्य-सत्ता का विलोपन कर सकेंगे। गांधीजी की कल्पना की अहिंसक संस्कृति यदि हम सबको स्थापित करनी हो तो वह ऐसे आत्मनिर्भर गांवों के आधार पर ही हो पायेगी। लोगों को यह महसूस होना जरूरी है कि हमारी शक्ति से ही हम हमारे गांव को उन्नति की ओर ले जा सकेंगे। ❑

करो या मरो

❑ शंकर दयाल सिंह

आजादी के स्पर्श बिना करोड़ों जनता को दुनिया की मुक्ति के यज्ञ में दिल से भाग लेने की और क्या कोई रीति हो सकती है? आज तो जनता के प्राण शोषित हो गये–फीस दिये गये हैं। उनकी निस्तेज आंखों में तेज लाना हो, तो आजादी कल नहीं, आज आनी चाहिए। इससे मैंने आज कांग्रेस से यह बाजी लगवायी है, या तो कांग्रेस देश को आजाद करेगी या खुद फना हो जायेगी–'करेंगे या मरेंगे!'

–8 अगस्त, 1942 की आधी रात में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पर बोलते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी।

तब आगे...

बाबू, क्या बताएं, न जाने भगवान ने कहां से मुझमें उस समय यह शक्ति भर दी कि मैं, जैसे पेड़ पर चढ़ते है वैसे चढ़ गया टेलीफोन वाले खंभे पर और जय महात्मा गांधी की बोलकर ज्यों लाठी चलायी कि तार तो टूट ही गया, मैं भी धम्म से गिर गया।

उसके बाद?

—हम और विलास संडासी लेकर रेलवे लाइन के पास गये, इधर-उधर देखा, न केई आदमी और न कोई गाड़ी-घोड़ा। बस दोनों ने मिलकर जोर लगाया, बहुत मुश्किल से एक स्क्रू ढीला हुआ और 'जय महात्मा गांधी की' बोलना था कि लाइन एने से ओने हो गयी।

—फिर क्या हुआ?

बता दें वह भी साफ-साफ। हल्ला हुआ कि थाने पर कब्जा करना है, बस विलास और हम पहुंच गये वहां, देखा तो पांच-छह सौ की भीड़। सिपाही-दरोगा को यह देखते ही जड़इया बुखार आ गया। कांपने लगा, क्योंकि वह लोग छह थे और यहां भीड़ बढ़ती चली जा रही थी। इसलिए दारोगा गिड़गिड़ाकर बोला—आप सभी को जो भी करना है, शांति से कर लें, तोड़-फोड़ न करें और कुछ नुकसान भी न करें। मैं भी तो आप ही के समान इसी मिट्टी का हूं। फर्क यही है कि रोटी के लिए यह पाप भोग रहा हूं।

हां, आगे...

—अपने ही गांव का जगदीश बड़ा हिम्मतवार तगड़ा जवान था। वह तिरंगा लिए हुए थाने के ऊपर चढ़ गया और एक डंडे में खोसकर उसे फहराने लगा, भीड़ ने तालियां बजायीं और लोगों ने जय-जयकार से गुंजा दिया—महात्मा गांधी की जय, जवाहरलाल नेहरू की जय, नेताजी सुभाषचंद्र बोस की जय, जयप्रकाश नारायण की जय...।

उसके बाद...

—उसके बाद आपस में ही बहस हो गयी कि आग लगायी जाये कि नहीं। कोई कहता था लगा दो आग, कोई कहता था कि दारोगा-सिपाही को भी एक कमरे में बंद करके भून दो। विचार चल ही रहा था कि हम सभी ने देखा एक कोने में आग की लपटें उठ रही हैं, लोग बाग इधर-उधर होने लगे कि तभी गोरों और गुरखों से भरी दो लॉरी आ गयी और आते ही फायरिंग शुरू। कौन गिरा, कौन भागा, किसका सिर फटा, किसका हाथ टूटा उसकी तो गिनती ही नहीं है, लेकिन हजारों लोग तब तक आ जुटे थे और घमासान लड़ाई शुरू हो गयी थी। मिलिट्री के सामने हम कितना टिकते और वह भी किसी के हाथ में एक छड़ी तक नहीं। मुझे भी गोली जांघ में लगी और गिर गया, बाद में बेहोशी की हालत में ही जेल के अस्पताल में पहुंचाया गया।

रस ले-लेकर गांव का सुमरिन न जाने इस तरह के कितने किस्से-कहानियां रोज सुनाता है। जेल से जब वह छूटकर आया तो लोगों ने उसका नाम रख दिया—सुराजी भाई, जय हो सुराजी भाई की।

और पूरे देश के शायद ही किसी हिस्से में ऐसे सुराजी भाई न हों, जिन्होंने आजादी की लड़ाई में कुछ न कुछ योगदान न दिया हो।

कैसे हुआ यह सब? किसने उन्हें ललकारा? किसने हवा बहा दी? कौन था वह, जिसने बैठे-बिठाये नौजवानों को पागल बना दिया? किसने यह जादू-टोना किया कि आपसे आप हजारों पांव आगे बढ़ चले तथा हाथों में अतुलित शक्ति आ गयी? आखिर क्या हुआ?

7 अगस्त, 1942 को बंबई में कांग्रेस महासमिति की बैठक और उसमें पारित प्रस्ताव 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' और उसके बाद बापू का आह्वान—यह हमारी आखिरी लड़ाई है—करो या मरो 'डू और डाई'। प्रस्ताव पारित होने के दो-तीन घंटे के अंदर ही अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में भाग लेने आये सभी नेता पुलिस के चंगुल में और 9 अगस्त को भोर होते न होते देश के हर हिस्से में जहां जो भी कांग्रेसी नेता मिला वह बंद कर दिया गया। जो छिप सके, वे छिप गये और उनके घरों की कुर्की-नीलामी होती रही।

प्रस्ताव में यह कहा गया था कि यदि गांधीजी या अन्य सभी नेता पथ-प्रदर्शन के लिए बाहर नहीं रहे तो जनता इस संबंध में सही कदम उठाये, वही हुआ। जनता ने, जिसमें अधिक संख्या नौजवानों की थी 'करो या मरो' को मूलमंत्र के समान गांठ में बांधा और सिर पर कफन लेकर हजारों-लाखों लोग गांवों-कस्बों-शहरों में निकल पड़े। कुछ करना है। क्या करना है, कोई नहीं जानता, लेकिन कुछ करेंगे और न कर पाये तो मातृभूमि के लिए अपने को न्यौछावर कर देंगे।

एक अजीब समां पूरे देश में पैदा हो गया। हर शख्स नेता बन गया और हर चौराहा 'करो या मरो' का दफ्तर।

उस समय का जीवंत वर्णन हिन्दी लेखक एवं क्रांतिकारी रामवृक्ष बेनीपुरी ने उसी समय लिखा था—''देश ने अपने को क्रांति के हवन कुंड में झोंक दिया है। क्रांति की ज्वाला देशभर में धू-धूकर जल रही है। बम्बई ने ही रास्ता दिखाया है। आवागमन के सारे साधन ठप्प हो चुके हैं। देश में जगह-जगह रेल की पटरियां उखड़ रही हैं, तार-टेलीफोन का संबंध-विच्छेद हो चुका है। थानों पर कब्जा किया जा रहा है। कचहरियां वीरान पड़ी हैं। धुआंधार गोलियां चल रही हैं। सड़कों पर बैरिकेड बन रहे हैं। स्टेशन लूटे जा रहे हैं। जो एकाध गाड़ियां चल पाती हैं, वह क्रांतिकारियों की मर्जी से। नेताओं ने जो सोचा हो, देश की जनता ने 'करो या मरो' के गांधीपाठ को अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है।

''लोगों की वीरता और सरकार की नृशंसता की ऐसी खबरें आ रही थीं कि रोंगटे खड़े हो जाते थे। पटना के विद्यार्थियों ने कमाल किया। वे सेक्रेटेरिएट पर कब्जा करने चले। वहां फौज और सशस्त्र पुलिस का जमघट जुटा था। विद्यार्थियों की टेक थी—कम से कम, हम इस पर अपना झंडा तो फहरायेंगे ही। कशमकश बढ़ती गयी, गोलियां चलीं, कई विद्यार्थी वहीं ढेर हो गये, किन्तु अहा! सामने देखिए, झंडा लहराकर रहा। न जाने किस तरह एक विद्यार्थी ऊपर चला गया, झंडा फहरा दिया। सामने जो विद्यार्थी दम तोड़ रहे थे, उन्हें इस झंडे को देखकर कितनी प्रसन्नता हुई होगी।

''छोटे-छोटे बच्चे बेधड़क तार और टेलीफोन के लंबे खंबे पर चढ़ जाते और उसमें लगे उजले डिब्बे को तोड़कर तार-टेलीफोन की लाइन खराब कर देते। घरेलू नौकरों ने तुरंत अपना संगठन बनाया और यातायात को अवरुद्ध कर देने का जिम्मा अपने ऊपर लिया। पेड़ों की मोटी-मोटी डालों को काटकर, घर की फालतू चीजों का सड़कों पर अंबार लगाकर, उन्होंने रास्ता जाम कर दिया। एक ओर से सड़कें साफ की जातीं कि पीछे से जाने कौन लोग कब आकर फिर बैरिकेड बना देते। शूट एट साइट (देखते ही गोली मारो) का स्थायी आदेश, हथियारबंद पुलिस और सैनिकों को दे दिया गया था किन्तु किसको इसकी परवाह थी।

''सड़कों को खोद डालने और पुलों को तोड़ने के भी व्यापक प्रयत्न हुए। साधारण कुदाल, गेंती, हथौड़ा, छैनी से वह कमाल किया गया कि देखने वालों को आश्चर्य होता। क्या बिना किसी खास औजार के आदमी यह कर सकता है? यह प्रश्न बार-बार उठाया जाता।

''कितने रेलवे-गोदाम लूटे गये, कितनी रायफलें छीन ली गयीं। देहातों में तो और भी घनघोर हुआ, पुलिस वर्दी फेंककर पनाह मांगती फिरती थी? जिन्होंने हेठी दिखलायी, जलते हुए थाने की भट्ठी में उन्हें भी झुलसना पड़ा।

''हां, यह इंकलाब है। बम्बई से आई आवाज—इंकलाब जिन्दाबाद! न जाने किसने यह नारा दिया, जो देश के कोने-कोने में फैल गया।'' *(जंजीरें और दीवारें : रामवृक्ष बेनीपुरी)*

सही मायने में अगस्त-क्रांति की जो तस्वीर उन सभी ने दी है, जो इसके दर्शक या नियंता रहे हैं, वह आज भी रोमांचित कर देती है। हम शब्दों का मुलम्मा चढ़ा सकते हैं, कल्पना लोक में विचर सकते हैं, भाषा की पच्चीकारी कर सकते हैं, लेकिन संवेदना और अनुभूति का वह ज्वर नहीं पैदा कर सकते, जो आंखों देखी तथा स्वयं भोगी अनुभूतियों में है।

ऐसी ही एक संवेदनात्मक अनुभूति अभी हाल में ही मेरी नजरों के सामने आकर खड़ी हो गयी है। जो हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ. शिवप्रसाद सिंह की कलम से निकली, जिसे उन्होंने जवाहरलाल के प्रसंग में 'अंधेरी रात का गुलाब' शीर्षक से लिखा है—''स्वतंत्रता! इस शब्द का जादू क्या होता है, यह मुझे 1942 के पहले मालूम नहीं था। 1942 के बाद से निरंतर इसके बारे में सोचता-विचारता रहा हूं। इसके भीतर कितनी परतें हैं, यह भी धीरे-धीरे करके खुलती गयी हैं। इसकी आखिरी परत को देखकर ही दोस्तोवस्की ने कहा था, ''शायद मनुष्य और मनुष्य जाति के लिए इतना अनिवार्य और कुछ नहीं है, जितनी स्वतंत्रता।' अपनी चरम सीमा पर यह अकेलेपन का अभिशाप भी लगे, इसीलिए सात्र ने जब कहा कि 'मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है' तो असंगत नहीं था। इस स्वतंत्रता के इतने पहलू हैं, इतने विभेद हैं, इतने रूप हैं, फिर भी सबके भीतर यह एक-सी व्याप्त ऐसी अखंड सत्ता है कि समझने के लिए इसे जीना जरूरी लगता है।'

''1942 के बाद से मैंने इसकी अनेक परतों को समझा। किसी न किसी रूप में शक्ति भर भोगा और जीया, किन्तु इस जीने में जादू न था, विवशता थी और कर्तव्य की भावना ही थी। जादू तो सिर पर एक बार ही चढ़ा और वह 1942 में ही, जब मैं जमानियां हाईस्कूल में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था। नारा लगाने की शक्ति तब भी मिली थी और जोश में सुध-बुध खो बैठने की विवशता उस समय भी थी। तार-टेलीफोन कट रहे थे, रेल की पटरियां उखड़ रही थीं, पुल टूट रहे थे, स्टेशनों, डाकखानों, कचहरियों, सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहराने की उमंग का आर-पार न था और तब धीरे-धीरे वह दिन भी आया जब टूटे पुलों को जोड़ती, पटरियों को ठीक करती, गोरे सैनिकों की 'बोगी' आयी और जमानियां में गोली चली, बलिया का स्वदेशी राज्य छिन्न-भिन्न हुआ। जनता पर बंदूक के कुंदों और संगीनों की वर्षा हुई। आदमी पेड़ों से औंधे मुंह लटकाये गये। नाक में मिर्च का धुआं दिया गया। धनी-मानी लूटे गये। औरतों पर बलात्कार हुए। 42 का विद्यार्थी आंदोलन नेताओं के हाथ से बाहर निकल चुका था, हिंसात्मक हो गया था—मन ग्लानि से भरा हुआ था। आंदोलन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए कोई बड़ा नेता तैयार नहीं हुआ...यानी यह सारा तरुण-जोश

निरर्थक था? यह सारी उमंग बेमतलब थी? सितंबर की बारिश में रोते आसमान के नीचे, असफल-क्रांति के विद्यार्थी-सैनिक जनता पर होने वाले अत्याचारों के लिए अपने को दोषी मानकर ग्लानि और लज्जा से सिर झुकए बैठे रहते, लोगों से मुंह छिपाये इधर-उधर घूमते रहते। घर के बड़े-बूढ़े हमारी नालायकी, मूर्खता और बचपन को कोस-कोस कर अपने दुख के आंसू पोंछ रहे थे—रेलवे लाइन पर गांव के लोगों को बेगार पहरा देना पड़ता। खाना खाकर रेलवे लाइन की ओर जाने वाली टोली जी भरकर हमें गालियां देती। पढ़ाई बंद थी, कृतविद्य का लज्जा से सिर झुका था। हमने तरुणाई के जोश और उमंग में जिसे बहुत महत् और पवित्र कार्य समझ लिया था, उसे अपने ही लोग अनुचित कहकर वितृष्ण हो गये थे—तभी एक दिन ऐसा आया कि हमने सुना कि जेल से निकलते ही नेहरू ने भाषण दिया कि सन् 42 की क्रांति का उत्तरदायित्व मुझ पर है...। तो वह क्रांति असफल न थी? शहीदों का खून पानी न था? कुर्बानियां बेवकूफी न थीं। सच उस दिन हमारे पैर खुशी के मारे धरती पर नहीं पड़ते थे। तन-मन पर पड़ा स्याह परदा जैसे एकबारगी झटके से हट गया था और उस बदली दुनिया में चारों तरफ मेरे सामने बस एक ही तस्वीर थी—जवाहरलाल नेहरू!''

इन दो उदाहरणों के बाद किसी उदाहरण की आवश्यकता मैं नहीं समझता। अगस्त-क्रांति के नाम से विभूषित 'भारत छोड़ो आंदोलन' आज भी उस पीढ़ी के सामने यथावत् है। एक ओर विश्व युद्ध की विभीषिका, तो दूसरी ओर गांधी की पुकार 'करो या मरो'। और भारत के लिए विश्व युद्ध गौण हो गया, प्रमुख हुआ अपना जन-आंदोलन।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत छोड़ो आंदोलन पूरे राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम में अपना सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि उसने जिस एकजुटता का परिचय दिया, उसने ब्रिटिश सरकार की आंखें खोल दीं। कांग्रेस की स्थापना का प्रारम्भिक लक्ष्य, निवेदन-आवेदन था, जिसे बड़े कायदे-करीने के साथ देश के बौद्धिक जनों का सहयोग प्राप्त था। गांधीजी के आगमन के बाद और कांग्रेस की बागडोर लेने के बाद स्थिति कुछ और ही हो गयी। लगने लगा मानो आम जनता ही कांग्रेस है और कांग्रेस ही आम जनता है। आज भी यह सच्चाई चली आ रही है। किसी गांव या कस्बे में दस-बीस लोग इस पार्टी या उस पार्टी में होते हैं, शेष जो लोग बच जाते हैं, वे आपसे आप अपने को कांग्रेसी मान लेते हैं।

गांधीजी ने असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन में आम जन को ही आधार बनाया। वे दक्षिण अफ्रीका से ही यह अनुभव लेकर आये थे कि जब तक साधारण जनता किसी आंदोलन की शिरोरेगा में नहीं होती है, तब तक कोई भी आंदोलन सफल नहीं हो सकता। अतः उन्होंने अपने कार्यक्रमों का आधार ही गांवों-कस्बों के लोगों को बनाया और उनके बीच में गांधीजी की आवाज जादू के समान पहुंचती थी।

भारत छोड़ो आंदोलन में भी यही हुआ। एक दिन के लिए भी इसका संचालन करने के लिए गांधीजी बाहर नहीं रहे, लेकिन उन्होंने जनता के नाम आठ अगस्त की रात में ही क्रमबद्ध रूप से चार सूचनाएं प्रसरित कीं—

1. आप किसी के प्रति मन में बैर और द्वेष भाव न रखें। सभी के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम का व्यवहार करें। ईश्वर द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हम सब दृढ़ रहें।
2. हर एक हिन्दुस्तानी अपने को आजाद समझे। संग्राम छिड़ जाने पर उनके मार्गदर्शन के लिए कोई नेता बाहर नहीं रहेगा। इसलिए अपने को ही नेता मानकर, अपनी जिम्मेदारी को समझकर, अपना कार्यक्रम स्वयं बनाकर युद्ध को चलाना होगा।
3. मैंने कांग्रेस को बाजी पर लगा दिया है। वह या तो सफल होगी या मर मिटेगी। यह जो लड़ाई छिड़ रही है, सामूहिक लड़ाई है। हमारी योजना में गुप्त कुछ भी नहीं होना चाहिए। हमारी लड़ाई खुली लड़ाई है।
4. मैं इस लड़ाई में नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रहा हूं। सेनापति या नियंत्रक के रूप में नहीं, बल्कि आपके तुच्छ सेवक के रूप में। जो सर्वाधिक सेवा करेगा, वही मुख्य सेवक माना जायेगा। मैं तो आप लोगों को जो मुसीबतें और कष्ट झेलने पड़ेंगे, उनमें आपका हाथ बंटाना चाहता हूं।

आंदोलन की तीव्रता उन स्थानों में अधिक रही, जहां के नेता सशक्त थे। ऐसी जगहों में नेता के न रहने पर भी वातावरण में उनका संदेश गूंजता रहा और वहां के लोगों ने सबसे ज्यादा कुर्बानी दी। उदाहरण के लिए, बिहार प्रांत का सारण जिला जहां के डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, बाबू बृजकिशोर प्रसाद, मौलाना मजहरूल हक, जयप्रकाश नारायण, महामाया प्रसाद सिन्हा जैसे नेता थे।

गांधीजी ने भारत छोड़ो के मूल प्रस्ताव में और अपने भाषण में भी बार-बार अहिंसा और सत्य इन दो बातों पर जोर दिया। लेकिन नेताओं के अभाव में आंदोलन जहां-तहां हिंसात्मक हो गया। गांधीजी के लिए सत्य और अहिंसा एक धार्मिक विश्वास था, जबकि कांग्रेस ने उसे एक नीति के रूप में लिया था। हालांकि दोनों सिक्के के एक ही पहलू थे।

जितना ही ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र चलता था, गांधीजी अहिंसा पर जोर देते थे और उनका कहना था कि एक भी गोली चलाये बिना ही हम अपने लक्ष्य के निकट पहुंचते जा रहे हैं।

गांधीजी ने 'करो या मरो' का जो नारा दिया था, उसे जनता ने अंगीकार किया, लोगों ने अपनी जान की बाजी लगा दी और स्वयं गांधीजी ने आगाखां महल में कैद होकर अपने जीवन की सबसे बड़ी कुर्बानी दी—महादेव देसाई तथा माता कस्तूरबा का वियोग। उन्होंने 'करो या मरो' को चरितार्थ कर दिया था। ❑

6 अगस्त : हिरोशिमा दिवस-स्मरण

परमाणु संयंत्र भी तो तैरते हुए बम हैं

❑ कार्ल ग्रासमैन

अभी तो हम जमीन पर बने-खड़े परमाणु बिजलीघरों की कई सारी समस्याओं में उलझे पड़े हैं और इधर इनको समुद्र में उतारने की तैयारी भी चल निकली है। जिस दिमाग ने जमीन पर इन्हें बनाया है और बेहद सुरक्षित बताया है, वही जुबान समुद्र में तैरने वाले परमाणु बिजलीघरों को भी एक आदर्श बिलकुल निरापद योजना बता रही है। एक बार ये बन गये तो फिर हमारे जैसे देशों में उसी ढंग से बेचे जायेंगे जैसे परमाणु ऊर्जा करार ने हमें अपने बिजलीघर टिका दिये हैं। जब बम तैरते रहेंगे तब किसी हिरोशिमा पर अणुबम गिराने की क्या जरूरत होगी। –संपा.

तैरते हुए परमाणु संयंत्रों के निर्माण की एक योजना पर काम शुरू हो चुका है। इसे बना रहा है रूस। उसने इस काम के लिए अपने उत्तरी और पूर्वी तटों का विशेष रूप से चयन भी कर लिया है। योजना सफल हो गयी तो वह भविष्य में इनको पूरी दुनिया को बेचने की तैयारी भी कर रहा है। रूस के राजकीय परमाणु ऊर्जा आयोग सेस्टोम के निदेशक सीरजी किरिचेंको का कहना है कि ऐसे तैरते बिजलीघर पूरी तरह से सुरक्षित हैं, जिस पर पहला तैरता परमाणु संयंत्र लगाया जायेगा।

दुनिया में कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक हैं जो इन सब बातों पर नजर रखते हैं। उनका एक संगठन भी है : यूनियन ऑफ कंसर्ड साइंटिस्ट संगठन के वरिष्ठ सुरक्षा अभियंता ने तैरते परमाणु संयंत्र में दुर्घटना को जमीन पर होने वाली दुर्घटना से भी बद्‌तर करार दिया है। वाशिंगटन स्थित इस संगठन के परमाणु सुरक्षा परियोजना के निदेशक लोचबाम का कहना है कि परमाणु बिजलीघर में किसी दुर्घटना की स्थिति में कुछ परमाणु पदार्थ पिघल कर जमीन में उतर जाता है और वहां बना रहता है।

परंतु तैरते परमाणु संयंत्र में ऐसी दुर्घटना में सारा पिघला जहरीला पदार्थ समुद्र में गिरेगा और उससे भाप का विस्फोट होगा, जिससे बड़ी मात्रा में ऊर्जा और रेडियोधर्मी पदार्थ निकल कर पूरे वातावरण में फैल जायेंगे। यह तो अणुबम के फट जाने जैसा ही होगा। पूरे पर्यावरण में भी बड़ी मात्रा में रेडियोधर्मिता प्रवेश करेगी। रेडियोधर्मिता जहर का बड़ा आवरण बन जायेगा। यह भयानक जहर हवा, पानी, बरसात के साथ कहां-कहां जायेगा, बरसेगा फिर जमीन पर बहेगा, कहां-कहां किस-किस नदी नाले तालाब, झील में मिलेगा, कितने लोगों को चौपट करेगा, इसका तो कोई हिसाब ही नहीं है। इससे समुद्र में तो रेडियोधर्मी प्रदूषण होगा ही और उसका अंश समुद्री जीवों पर, मछलियों आदि पर भी पड़ेगा।

सोवियत रूस की परमाणु संचालित पनडुब्बी के पूर्व मुख्य अभियंता और रक्षा मंत्रालय के परमाणु और रेडिएशन सुरक्षा निरीक्षण के पूर्व वरिष्ठ इंस्पेक्टर अलेक्जेंडर निटकिन का कहना है कि यह निश्चित ही एक जोखिम भरी योजना है। वे अब एक अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण स्थित शाखा के प्रमुख हैं। वे बताते हैं कि असंतोष वाले क्षेत्रों में तैरते हुए परमाणु संयंत्रों की बिक्री के माध्यम से लाभ कमाने की लालच में सुरक्षा को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

इन तैरते परमाणु संयंत्रों में भूमि पर बने संयंत्रों की तुलना में और भी अधिक खतरनाक ईंधन जैसे युद्धक श्रेणी का यूरेनियम 235 इस्तेमाल किया जायेगा। इसमें 40 प्रतिशत यूरेनियम होता है। भूमि पर बने ऐसे बिजलीघरों में यू-235 का संवर्धन स्तर 3 प्रतिशत होता है।

30 जून को पीटर्सबर्ग में फुटबाल के मैदान के आकार के एक बड़े जहाज के लोकार्पण के दौरान प्रेस विज्ञप्ति में रोस्टोम ने कहा था कि बहुत से देश जिसमें विकासशील देश भी शामिल हैं, इन परमाणु संयंत्रों में रुचि दिखा रहे हैं। द टाइम्स ऑफ लंदन के अनुसार जो देश संयंत्रों को खरीदने में रुचि दिखा रहे हैं उनमें चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, अल्जीरिया और अर्जेंटीना शामिल हैं। वर्ल्ड न्यूक्लीयर न्यूज ने इस सूची में नामीबिया और केप बेरडे को भी जोड़ दिया है।

इस तैरते परमाणु संयंत्र के विचार पर रूस में जन्मे एक व्यक्ति ने अमेरिका में काफी काम किया था। लेकिन वहां इसे अत्यधिक लागत, सार्वजनिक विरोध और ऊर्जा जरूरतों की कमी को देखते हुए पूरा बढ़ावा नहीं मिल पाया था। अमेरिका की एक कंपनी ने अपने दस्तावेज में जिक्र किया था कि 1969 में यह विचार पहली बार न्यूजर्सी स्थित पब्लिक सर्विस इलेक्ट्रिक एंड गैस कंपनी के उपाध्यक्ष रिचर्ड इकर्ट के मन में आया था। उनका कहना था कि जमीन पर बने परमाणु संयंत्रों को ठंडा रखने के लिए बहुत ज्यादा मात्रा में पानी की जरूरत पड़ती है। तब क्यों न हम ऐसे बिजली घर पानी के बीच में ही बना लें।

फिर इस कंपनी ने अपना यह विचार वेस्टिंग हाउस इलेक्ट्रिक कंपनी को बताया। वह इस तरह के संयंत्र बनाने के लिए तैयार हो गयी थी। सन् 1970 में वेस्टिंग हाउस और रेन्नेको ने फ्लोरिडा के ब्लाउट आइलैंड पर इस तरह की सुविधा को बनाने हेतु→

7 अगस्त : गुरुदेव पुण्यतिथि : स्मरणांजलि

रवीन्द्रनाथ का स्कूल : आनंदधाम

❑ विनोबा

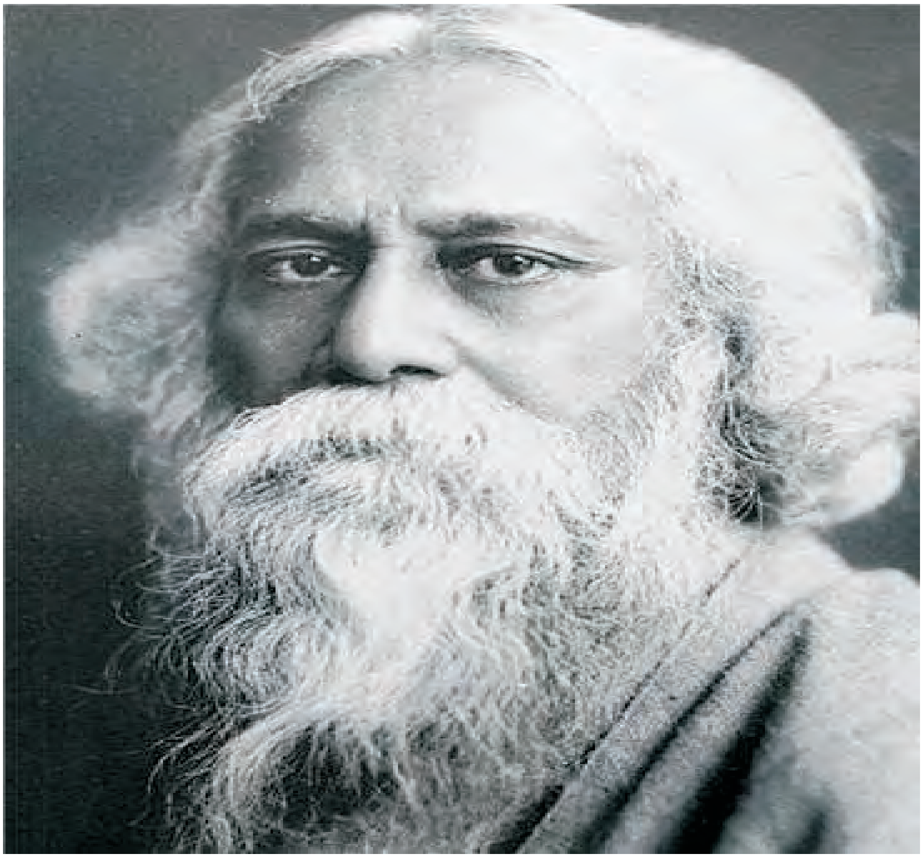

यह स्कूल सन् 1829 में स्थापित हुआ था। इस बीच देश में कितने ही परिवर्तन हुए। उन सभी का यह स्कूल साक्षी है। इस स्कूल से कई महान विद्यार्थी निकले, जिनमें पहला स्थान शायद रवीन्द्रनाथ का है। उनकी स्मृति में यहां एक पत्थर बैठाया गया है। स्कूल बड़ा गौरव रखता है कि यहां रवीन्द्रनाथ पढ़ते थे। उस समय रवीन्द्रनाथ को मालूम नहीं था कि वे 'रवीन्द्रनाथ' हैं और न स्कूल वालों को ही मालूम था कि वे 'रवीन्द्रनाथ' होंगे।

यह स्कूल आदरपूर्वक उनका स्मरण रखता है। गुरुदेव भी उसका आदरपूर्वक स्मरण करते होंगे। अवश्य ही उन्होंने लिखा है कि ''मैं पाठशाला के कारावास से मुक्त हुआ, स्कूल छोड़कर चला गया।'' उनका चित्त यहां नहीं लगा। भले ही उनका चित्त यहां लगा न हो, लेकिन स्कूल वालों ने तो अपना चित्त उन पर लगा ही दिया है। जिस कारावास में बड़े-बड़े लोग बंदी बनकर रह गये, वहां बोर्ड पर उनके नाम भी लिखे जाते हैं। यरवदा-जेल में महात्मा गांधी का और मंडाले-जेल में लोकमान्य तिलक का नाम लिखा है। ठीक इसी तरह यहां भी समझ लें। ऐसों को पाकर कारवास भी धन्य हो उठता है!

किसी मां के उदर से कौन-सा अवतार होगा, यह मालूम नहीं होता। कहते हैं, कौशल्या यह जानती थीं और देवकी भी जानती थीं। लेकिन जब रामचन्द्र का जन्म हुआ और उन्हें माता कौशल्या ने गोद में लिया, तो माता वह ज्ञान भूल गयीं और बालक समझकर उसका लालन-पालन करने लगीं। इसी तरह जानने वाले भी जब अवतार को भूल जाते हैं, तो न जानने वालों के लिए क्या कहा जाये?

इसलिए देश का कर्तव्य है कि जो भी बच्चा जन्म ले, उसमें भगवान् की मूर्ति छिपी समझकर उसके साथ व्यवहार करें। लेकिन वैसा व्यवहार हमरे देश में नहीं होता। इसका कारण कुछ तो जनसंख्या में वृद्धि है और कुछ असमानता। इन्हीं दो कारणों से हम बच्चों को ठीक से परवरिश नहीं कर पाते। फिर भी हमारा कर्तव्य है कि बच्चों की परवरिश का, उनकी तालीम का ठीक इंतजाम करें।

→एक संयंत्र भी स्थापित कर लिया था। इस तरह के पहले चार संयंत्रों को सर्वप्रथम न्यूजर्सी के लिटिल एग हार्बर और शहर से 11 किलोमीटर पर समुद्र के बीच बांधना था। इस बीच कीमतें आसमान पर पहुंच गयी और फिर बढ़े हुए खर्च के अलावा इन दोनों शहरों के साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी योजना का बड़े पैमाने पर विरोध हुआ। सन् 1973 में आये तेल संकट ने पीएसई एंड जी की अधिक ऊर्जा संरक्षण की आवश्यकताओं को भी कम कर दिया। 1984 में ऑफशोर पॉवर सिस्टम नामक एक कंपनी ने 80 अरब रुपये खर्च करने के बाद किये गये करार को रद्द करते हुए इस असफल योजना को हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर दिया था। इस तरह जो योजना अमेरिका में शुरू हुई और वहां ठप भी हो गयी, उसे अब रूस आगे ले जा रहा है और पूरी दुनिया में उसे फैलाकर भारी लाभ कमाने की तैयारी कर रहा है। ये तैरते हुए अणुबम न जाने कितनों को डुबोयेंगे! ❑

इस देश की संस्कृति ने बच्चों को खूब गौरव प्रदान किया है। भगवान् श्रीकृष्ण का बचपन से अंत तक सारा जीवन अनेक पराक्रमों से भरा है। साथ ही उनमें कारुण्य और ज्ञान भी था। लेकिन देश में जिस कृष्ण का रूप लोग जानते हैं वह है, बाल कृष्ण। यहां उसे 'लाडू गोपाल' कहते हैं। बालक के रूप में परमात्मा की भक्ति ने इस देश में खासी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। ठेठ दक्षिण से उत्तर तक, पूर्व से पश्चिम तक जितनी महिमा बालकृष्ण की है, उतनी गीता गायक कृष्ण की नहीं और न महाभारत के पराक्रमी कृष्ण की है। इसलिए हमारे बालकृष्ण की उपासना खूब चली। लेकिन आम बच्चों की वैसी उपासना नहीं चलती। यह स्थिति नहीं है कि सभी बालक समान माने जायें। जब तक देश से सारी विषमताएं नहीं मिटतीं, तब तक पिताओं में भले ही विषमता रहे, लेकिन बच्चों के पालन-पोषण में किसी प्रकार की विषमता नहीं होनी चाहिए।

गौतम बुद्ध राजा के कुल में जनमे तो श्री शंकराचार्य अति दरिद्र ब्राह्मण कुल में। इसलिए कोई यह नियम नहीं बना सकते कि महापुरुष श्रीमान् या दरिद्र के ही घर जनम लेते हैं। भद्र लोगों के यहां ही अवतारी पुरुष होते हैं। वे राजाप्रासाद में जनमें बालक के रूप में आ सकते हैं या फुटपाथ पर पले बच्चे के रूप में—कुछ कह नहीं सकते। इसलिए सभी बच्चों का उत्तम इंतजाम होना चाहिए।

जब हम तमिलनाडु में घूमते थे तो आर्यनायकम जी हमारे साथ थे। वे नई तालीम के आचार्य और शिक्षाशास्त्र के विशेषज्ञ रहे हैं। वे रवीन्द्रनाथ के शांति निकेतन की नींव रहे। उनसे किसी ने पूछा : "आप शिक्षाशास्त्री हैं तो इस तरह भूदान-यात्रा में क्यों घूमते हैं?" उन्होंने जवाब दिया : "देहातों की हालत देख मुझे विश्वास हुआ कि दरिद्रों को जब तक भूमि नहीं मिलती, तब तक उनके बच्चों को तालीम देने का इंतजाम नहीं हो सकता। अनिवार्य शिक्षा कर दें, तो भी वह नहीं हो सकता, जब तक कि बच्चों को अच्छी तरह पोषण न मिले। इसलिए भूदान-यात्रा 'बेसिक एजुकेशन' का 'बेस' है।" दरिद्र पिता को पूरा खाना मिले या न मिले, उसकी शिकायत हम अभी नहीं करते। लेकिन उन दरिद्रों के बच्चों को अच्छा खाना-पीना मिले, इस बारे में हमारी शिकायत जरूर रहेगी। क्योंकि बच्चा राष्ट्र का आधार-स्तम्भ है। अगर उसकी तालीम का अच्छा इंतजाम नहीं होगा तो देश के भविष्य की शक्ति कम होगी। इसलिए बालकृष्ण की उपासना बहुत जरूरी है। आप मूर्ति की उपासना करते हैं, तो ठीक ही है। लेकिन जो साक्षात् भगवान की मूर्ति बालक के रूप में सामने है, उसकी उपासना अवश्य करनी चाहिए।

जिस स्कूल में रवीन्द्रनाथ तालीम पाते थे, उसका उन्होंने 'कारागार' के रूप में वर्णन किया। साफ है कि सदोष, तंग तालीम के कारण ही उन्होंने ऐसा कहा। लेकिन इन स्कूलों में अगर आज भी ऐसी तालीम दी जाती है तो सोचने की बात है आखिर इनका सुधार कब होगा। स्कूल ऐसा होना चाहिए, जहां बच्चे मुक्त मन से सीखें। उनका व्यक्तित्व सर्वांग विकसित हो रहा हो।

ध्यान रखें कि बच्चे उतने ही परिपूर्ण होते हैं, जितने उनके माता-पिता। उपनिषद् में आता है—पूर्णमदः पूर्णमिदम्—यह भी पूर्ण और वह भी पूर्ण। बाप भी पूर्ण और बच्चा भी पूर्ण। शिक्षक भी पूर्ण और विद्यार्थी भी पूर्ण! जब यह ख्याल हो जाये तो कुल शिक्षण का ढंग ही बदल जायेगा। अतः बालक को पूर्ण समझकर ही उसे तालीम देनी चाहिए, ताकि उसके पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन हो। इसके लिए सारी सृष्टि आनंदमय होनी चाहिए। स्कूल भी आनंदमय होना चाहिए। तब स्कूल की छुट्टी का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि वहां कोई सजा तो है नहीं। वह तो आनंद का विषय है।

आज यहां एक अच्छा पद्य गाया गया, जिसमें रवीन्द्रनाथ ने 'आनंदधाम' शब्द का प्रयोग किया है। यह रवीन्द्रनाथ की स्मृति का स्थान है। तो यहां एक साइनबोर्ड लगाया जाये—'आनंदधाम' और जो तालीम दी जाये, उसका स्वरूप हो आनंदमय। सीखना, खेलना सारे आनंद के ही प्रकार हों। अगर स्कूलों की ऐसी रचना होती है और हर बच्चे को पूर्ण अवतार मानकर उसके साथ व्यवहार किया जाता है तो दुनिया का रंग ही बदल जायेगा। ❑

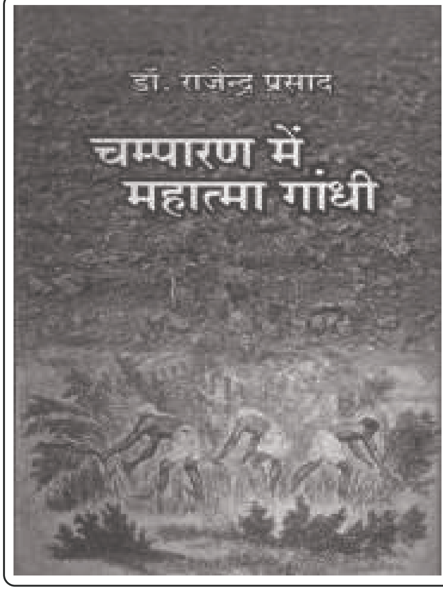

50 प्रतिशत की विशेष छूट

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष के विशेष अवसर पर सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** की पुस्तक **'चम्पारण में महात्मा गांधी'** **(मूल्य : 550/-)** की खरीद पर **50 प्रतिशत की विशेष छूट** दिया जा रहा है।

इच्छुक ग्राहक अपना महत्त्वपूर्ण क्रयादेश भेजकर पुस्तक मंगायें और **'चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष'** में गांधी-विचार के प्रचार-प्रसार कार्य में प्रकाशन का सहयोग करें। **–प्रकाशक**

बा-बापू : 150 पर विशेष

'बा'

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित होंगे। –संपा.

जैसे-जैसे समय बीत रहा था, अपना देश छोड़ने और दक्षिण अफ्रीका जाने का समय आ रहा था। आशंकाएं और उनसे उपजने वाली चिन्ताएं घेरा डाल रही थीं। भीतर-ही-भीतर कस्तूर उनसे उलझती-सुलझती रहती थी। कस्तूर पोरबंदर और राजकोट के लगभग सौ, सवा सौ मील के दायरे से बाहर कभी गयी नहीं थी। अब हजारों मील दूर समुद्र पार करके एक नये देश में चुनौतियों का सामना कैसे करेगी? वहां न कोई जान-पहचान थी और न कोई नाते रिश्तेदार। पति ही नातेदार थे और अपने भी थे। बाहर जाकर ही पता चलता है कि मर्द आकाशीय परिंदा होता है—जहां चाहे उड़कर बैठ जाये, औरत पिंजरे की पंछी बनकर घर में ही चूं-चूं करके वक्त गुजार देती है। अपने पंखों को निहारती रहती है। कभी खुलेंगे या नहीं? खुलेंगे तो कैसा लगेगा? वह वहां भी घर की मैना रहेगी, बच्चे भटकेंगे? पता नहीं बा, बापू और भाई से फिर कब मिलना होगा?

ये सब निजी सवाल थे। बस उसे एक ही बात सांत्वना देती थी, इस लंबी उबाऊ यात्रा के बाद उसका अपना घर होगा। नितांत निजी परिवार के साथ रहने को मिलेगा। रलियत बहन का बेटा भी उनके साथ जा रहा था। वह कस्तूर के पहले बच्चे से चंद महीने छोटा था। मोहनदास ने कस्तूर को बताया था कि दक्षिण अफ्रीका में पारसियों को अच्छी नजर से देखा जाता है। उस समय तो उसकी समझ में नहीं आया था कि मोहनदास कस्तूर और बच्चों को क्यों पारसी बनाने पर तुले हैं। पारसी फैशन की साड़ी और कपड़े कुलीनता की निशानी हैं। उसके मुंह से एकाएक निकल गया कि वहां रहने की इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी कि अपना रहन-सहन तक बदलना पड़ेगा? मोहनदास के देखने के ढंग से वह समझ गयी थी कि वे अपने निर्णय पर अटल हैं।

जहाज पर मोहनदास की अंग्रेजियत देखकर कस्तूर और बच्चे सन्न रह गये थे। मोहनदास चाहते थे कि सबेरे जगने से लेकर सोने तक, बा और बच्चे जूते-मोजे पहने रहें। एक मिनट के लिए भी जूते उतारना गवारा नहीं था। राजकोट का किसी को भी ऐसा अनुभव नहीं था। सब नंगे पैर घूमते थे। फर्श पर बैठते थे। जूते पहनने से पैरों में जख्म हो गये थे। मोजों में बदबू आने लगी थी। बच्चों को आदत डालने के लिए मोहनदास डेक पर स्वयं भी चलते थे और पत्नी और बच्चों को भी चलाते थे। इस पर ध्यान देते थे कि चलते हुए उनकी भंगिमा और चलने का ढंग कैसा

है। हर क्षण निर्देश मिलते रहते थे : गरदन और कमर सीधी रखो, सीधे कदम रखो। आरंभ में कई दिन तक कस्तूर को लगता था कि वह अब गिरी, तब गिरी। सबसे बड़ा कारण जूते थे और तेज चाल थी।

रात का इंतजार रहता था। रात आए, जूते-मोजों से निजात मिले। मन-ही-मन राजकोट की आजादी याद आती थी। वहां कोई बंधन नहीं था। हर तरह के कपड़े पहनने की छूट थी, बशर्ते बेपर्दगी न हो। जमीन से लेकर पलंग तक पर कहीं भी पसरा जा सकता था। न ऊंट की तरह गरदन उठाकर चलना पड़ता था और न छुरे-कांटे से खाने की बंदिश थी। सबके लिए कांसे की थालियां थीं और खाने के लिए उंगलियां। यहां बच्चों तक को उंगलियां इस्तेमाल करने की इजाजत नहीं थी। चीनी मिट्टी की रकाबियां इतनी छोटी थीं कि बच्चों की क्या कहें, कस्तूर तक को खाना समेटने में दिक्कत होती थी। खाना खाना एक ऐसी कवायद थी जिसमें स्वाद का तो पता चलता ही नहीं था, डांट ऊपर से अलग खानी पड़ती थी। मुंह बंद करके खाओ, छुरी-कांटा ठीक तरह पकड़ो, मुंह से आवाज न निकले। बच्चे तो बच्चे, कस्तूर तक रुआंसी हो जाती थी। शायद सबको लगता था कि मोहनदास पिता या पति ही नहीं हैं, बाज हैं जो ताक लगाये हैं कि गलती हो तो पकड़ें। औजारों के सहारे खाना पेट में धकेलना अपने आप में संकट था। घर में जो खाना बनता था, उसके सामने यह खाना खाना सजा थी। शाकाहारी खाने में डबल रोटी और उबली हुई सब्जी। बच्चों ने तो पहले ऐसा खाना खाया ही नहीं था। कस्तूर को भी बेमजा लग रहा था। कस्तूर चाहती थी, जल्दी से जल्दी डरबन पहुंच जाऊं और सबके लिए अपने हाथ से खाना बनाऊं। पता नहीं वह दिन आयेगा भी या नहीं?

डरबन की दूरी पांच दिन की रह गयी थी। एकाएक समुद्र में गड़गड़ाहट के साथ तेज तूफान आया। समुद्र में ऐसी हलचल मच गयी जैसे शांत भीड़ पर अचानक लाठी चार्ज हो जाये। समुद्र में लहरों का हाहाकार मच गया। सब कुछ उलट-पलट हो रहा था। पता नहीं चल रहा था कि समुद्र में जहाज है या जहाज में समुद्र है। दोनों जहाजों को, जो आगे-पीछे को तैर रहे थे, लहरें कंदुक इव उछाल रही थीं। जैसे समुद्र की सत्ता को इन दो टेनी-से जहाजों ने चुनौती दे दी हो और उसकी सेनाएं सबक सिखाने पर उतर आयी हों। जो पहली बार समुद्री यात्रा कर रहे थे, वे भयभीत होकर बिना यह सोचे सुरक्षित स्थान खोज रहे थे कि जिस जहाज में वे पनाह खोज रहे हैं, वह स्वयं खतरे में है। सबको नीचे भेज दिया गया था। हर धर्म के लोग अपनी-अपनी प्रार्थनाएं कर रहे थे। ऐसे समान खतरे में फंसे सब धर्मों के ईश्वर भले ही अलग हों, अरदास एक हो गयी थी। यात्री लकड़ी के कुंदों की तरह लुढ़क रहे थे। कस्तूर और बच्चे उन्हीं यात्रियों में थे, जो पहली बार समुद्री यात्रा कर रहे थे। उन्हें लग रहा था जैसे जहाज के साथ उनके उदर में भी हवा के गोले फूट रहे हों। जहाज के कर्मचारियों के अलावा मोहनदास अकेले यात्री थे, जो समुद्र के इस उत्पास से अप्रभावित थे। मोहनदास ने बच्चों को केबिन में बैठाया, जितना हो सकता था, धीरज बंधाया। उसके बाद जहाज के कप्तान के आग्रह पर एक-एक यात्री के पास जाकर, हिम्मत बंधाने में जुट गये।

कस्तूर दोनों बच्चों को सीने से लगाये थी। उसे बच्चों के साथ अपने पति की भी चिन्ता थी। वे डगमगाते जहाज में एक-एक यात्री की हिम्मत बंधा रहे थे। जो स्वयं नहीं डरता, वही दूसरों को संकट में जीने की प्रेरणा दे सकता है। एक कहानी बचपन में सुनी थी। एकाएक याद आ गयी। वे बीच-बीच में बात करते हुए कहानी सुनाते जाते थे। एक कारवां जा रहा था, उसमें एक लड़का भी था। एकदम से बारिश का तूफान आ गया। सब लोग बरगद के नीचे खड़े हो गये। उस पेड़ पर बार-बार आसमान से बिजली टूट कर आती थी और लौट जाती थी। सब लोग बहुत डर गये। उन्होंने आपस में सोचा कि जरूर कोई हमारे बीच में है, जिस पर बिजली की नजर है। उसी की वजह से बिजली आती है और लौट जाती है। उन्होंने आपस में तय किया कि हर आदमी सामने वाले पेड़ तक दौड़कर जायेगा और लौट आयेगा। जो मनहूस होगा, उस पर बिजली गिर जायेगी, हम सब बच जायेंगे। अंत में लड़का रह गया। सबने कहा, यही है जिसकी वजह से बार-बार बिजली आ रही है। यह हम लोगों की वजह से बच जाता है। जब उससे कहा गया तो उसने जाने से मना कर दिया, बोला—मैं डरता नहीं, पर मैं जाना नहीं चाहता। लोगों ने जबरदस्ती उसे बाहर धकेल दिया। वह दौड़ गया। जैसे वह गया, बिजली कड़की और पेड़ पर आ गिरी। सब जल मरे! आप सब उस बच्चे की तरह हैं। एक-दूसरे की जान बचा रहे हैं। नहीं तो जहाज अब तक डूब न गया होता। ऐसी मुसीबत में वे सब बातें अच्छी लगती हैं, जो जीवन की सुरक्षा का विश्वास दिलाती हों।

आखिरकार, सबके ईश्वरों ने सबकी प्रार्थनाएं सुन लीं। आसमान साफ हो गया था। सूरज चमक रहा था। मौत का साया सिमटते ही चेहरों पर जीवन का प्रकाश छिटक गया था। जो भूख मौत के डर से छिप गयी थी, वह चहकने लगी थी। यात्री बिना किसी तरह की हानि पहुंचाये, मौत के लौट जाने का उत्सव मना रहे थे। कुछ बुजुर्ग शुक्राने की नमाज अदा कर रहे थे। कुछ और लोग जमीन पर सिर रखकर ईश्वर को धन्यवाद दे रहे थे। दूसरे कुछ लोग आसमान की तरफ देखकर ईश्वर से आंखों ही आंखों में संवाद करने की जुस्तजू में थे।

मोहनदास, जिन्हें यात्री मिस्टर गांधी कहने लगे थे, बच्चों के साथ समुद्र की लहरों की उछाल से धुले, अधसूने डेक पर चहलकदमी करने निकल पड़े थे। दिन-भर के बाद बच्चों ने जूते-मोजे खुशी-खुशी पहने थे। कुछ यात्री जो डेक पर आ गये थे, मिस्टर गांधी का ससम्मान अभिवादन कर रहे थे। उन्होंने अपने परिवार को अकेला छोड़कर उनकी सुध जो ली थी। कुछ दिन बाद कुरलैंड और नादिर, दोनों जहाज बंदरगाह पर पहुंचने वाले थे। यात्री खुशी से नाच उठे थे, जैसे साक्षात जिंदगी नाच रही हो। सब अपने-अपने अंदर उठती लहरों में चढ़-उतरा रहे थे। समुद्र की लहरें उन अंतर-लहरों के सामने टिक नहीं पा रही थीं।

लेकिन एकाएक जैसे समुद्र ठहर गया। सब सन्न थे। दोनों जहाजों के लंगर डालने से पहले ही स्वास्थ्य विभाग के काले-गोरे अधिकारी डोंगियों पर, जहाजों के चारों ओर छा गये थे। उनके पास सरकारी मुहर लगा हुक्मनामा था, जिसमें लिखा था कि कोई भी यात्री पांच दिन तक जहाज से बाहर नहीं आये। उनका कहना था कि दोनों जहाज बंबई में फैली प्लेग के कारण क्वरेनटाइन संबंधी कानून के तहत सरकार के दखल में रहेंगे। यात्री लगभग उतने ही बदहवास थे, जितना तूफान के कारण पहली बार हुए थे। बंबई में प्लेग दो महीने पहले फैली थी। उसका खामियाजा इतने दिन बाद कुरलैंड और नादिर जहाजों के बेकसूर यात्रियों को, दक्षिण अफ्रीका में, हिन्द महासागर के तट पर भुगतना पड़ रहा था।

मोहनदास यानी मिस्टर गांधी का काम बढ़ गया था। वे यात्रियों के तनाव को कम करने में लग गये। इनडोर खेलों का आयोजन किया गया। गांधी ने भी बच्चों के साथ उन खेलों में हिस्सा लिया। उसी दिन क्रिसमस-डे था। गांधी परिवार और केबिन के यात्रियों को जहाज के अधिकारियों ने आमंत्रित किया था। उसमें गांधी अंग्रेजी में ही बोले, उन्होंने ईसाई धर्म को संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्मों में बताया। कस्तूर की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वे शांति और अहिंसा के महत्त्व को समझा रहे थे। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता को ईसाई धर्म का प्रतिगामी बताया। पर कस्तूर के मन में कुछ और ही सवाल था। कोई दूसरा तूफान तो आने वाला नहीं?

बड़े दिन के उत्सव और प्लेग की छूत के कारण बंदिश के अगले दिन स्वतः क्वरेनटाइन यानी सूतक की अवधि बढ़ा दी गयी थी। इस सूचनाव से कस्तूर और बच्चे बिखर गये थे। बाद में पता चला कि उसके पीछे न बंबई का प्लेग था और न डरबन में फैली कोई महामारी थी। कारण था, गोरों के मन में गांधी के प्रति फैला गुस्सा। कस्तूर इस बात से परेशान हो उठी। आखिर उन्होंने जहाज में बैठे-बैठे ऐसा क्या कर दिया कि जहाज के लोग नाराज हो गये? वे तो वैसे भी छह महीने से भारत में थे। बावजूद मन की परेशानी के, उसने इस बारे में बच्चों से कुछ नहीं कहा। बाहर से लोग आकर मोहनदास से गुपचुप बात कर रहे थे। वातावरण में तनाव बढ़ रहा था। दादा अब्दुल्ला कंपनी से कोई रिपोर्ट आयी थी। वे सब अंग्रेजी में बतिया रहे थे।

कस्तूर कुछ न समझ पाने के कारण चिन्तित हो रही थी। उसकी समझ में इतना आया था कि किसी किताबिया को लेकर बात हो रही थी। जब मोहनदास खानी हुए तो कस्तूर ने पूछा, 'किताबिया की क्या बात है?' उन्होंने हंसकर टालना चाहा। कस्तूर बोली, 'तुम हंस रहे हो, मैं यहां जहाज में, समुद्र के बीच अपने बच्चों के साथ फंसी हूं। तुम सब कुछ छिपा रहे हो। मैं भाषा नहीं जानती, कुछ समझती नहीं, किसी से पूछ भी नहीं सकती। कहां जाऊं? किससे पूछूं?'

मोहनदास एक मिनट चुप रहे। फिर बोले, 'तुम्हें याद है, राजकोट में सब बच्चों की मदद से हरे रंग की किताबों पर टिकट चिपकवाकर लोगों को डाक से भेजी थी। किसी ने गलत खबर फैला दी है कि एम. के. गांधी ने हरे रंग की उस किताब में गोरों और गोरी सरकार को बदनाम किया है, लिखा है कि वे भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। बाहर यह बात फैलायी गयी है कि हरी किताब का लेखक गांधी, दो जहाज भरकर भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका में बसाने लाया है। वे उनकी रोजी-रोटी छीनने आये हैं। मैं तो जानता भी नहीं इन जहाजों में कितने भारतीय हैं और क्यों यहां आ रहे हैं। लेकिन डरने की कोई बात नहीं, कंपनी के वकील मि. लाटन हमें बंदरगाह पर लेने आ रहे हैं।'

'आखिर ये गोरे तुमसे इतने नाराज क्यों हैं, किताब में ऐसा क्या लिख दिया?'

'कुछ नहीं, वही लिखा है जो मैं नेटाल में कहता रहा हूं, भारतीय मजदूरों के खिलाफ अमानवीय कानून की वापसी को लेकर। वे मुझसे बात करें तो मैं उन्हें समझा दूंगा।'

'वे नाराज हैं तो तुम्हारी बात क्यों सुनेंगे?'

मोहनदास के मन में भी यही सवाल था। उनके पास एक ही जवाब था— विश्वास...।

वह संकट लगभग उन्नीस दिन चला। गोरे आंदोलनकारियों की मांग थी, दोनों जहाज लौटा दिये जाएं। दूसरी मांग थी भारतीयों को नेटाल से बाहर कर दिया जाये। सरकार उन लोगों का साथ दे रही थी। यह साजिश थी कि जहाज न लौटें तो यात्रियों को तब तक बंदरगाह पर न उतरने दिया जाये जब तक गोरों का असंतोष पूरी तरह समाप्त न हो जाये। तनाव हर दिन बढ़ रहा था। भोजन और पानी की पूर्ति में भी कमी आने लगी थी। मोहनदास लगातार यात्रियों को समझा रहे थे। कस्तूर भी गांधी के साथ जुड़कर समझाना चाहती थी, पर भाषा की समस्या थी। वे बता रहे थे, इन धमकियों पर

मत आओ, जितना नेटाल पर इन लोगों का हक है, उतना ही तुम्हारा भी है। ये भी हमारी तरह बाहरी हैं। कस्तूर पति और बच्चों को लेकर सबसे ज्यादा डरी हुई थी। मोहनदास के खिलाफ लगातार मीटिंगें हो रही थीं, नारे लग रहे थे : 'गांधी को फांसी दो'; 'खट्टे सेब के पेड़ से लटकाओ।'

वहां उन दिनों खट्टे पेड़ से लटकाकर फांसी देना सबसे बड़ी सजा मानी जाती थी।

अंत में वह दिन आया जब जहाजों पर से प्रतिबंध हटा। बंबई से चले चवालीस दिन हो गये थे। जमीन की परछाई तक देखने को नहीं मिली थी। जब जहाजों को बंदरगाह में प्रवेश करने की इजाजत मिली तो लोग खुशी से नाच उठे। दोनों जहाजों के डेक भर गये।

कस्तूर के लिए यह खबर उतनी खुशी देने वाली नहीं थी जितनी औरों के लिए। उसका मन डरा हुआ था कि न जाने पति और बच्चों के साथ गोरे कैसा व्यवहार करेंगे? वैसे भी वहां कोई अपना नहीं था।

जब खबर आयी कि सबको एडिंग्टन बंदरगाह पर उतना है तो बच्चे बा से चिपट गये। उन्होंने लगभग आठ हफ्तों से धरती के दर्शन तक नहीं किये थे। मछली पानी में जीती है, मनुष्य धरती पर सांस लेता है। बच्चों ने नये-नये कपड़े पहने, बा ने सामान बांधा। उतरने की पूरी तैयारी करके मोहनदास का इंतजार करने लगे। जैसे-जसे समय बीतता था, बच्चों का उतावलापन बढ़ जाता था। कस्तूर के मन में तरह-तरह के अशुभ विचार आने लगते थे। इसी बीच एक खलासी आया था और मोहनदास को कैप्टन के केबिन में बुलाकर ले गया था। तबसे उनका कहीं पता नहीं था। दूसरे यात्री जहाज की सीढ़ियों से उतरकर जा रहे थे। कुछ ही देर में ज्यादातर यात्री उतरकर नीचे चले गये। बच्चे उतावले हो रहे थे और कस्तूर की आशंकाएं भीतर ही भीतर उसे खरोंच रही थीं। पांच साल का मणिलाल नींद में होते हुए भी चिड़चिड़ा रहा था। हरिलाल और गोकुलदास बेचैन और असंतुलित थे। हरिलाल ने खीजकर पूछा, हमें यहां कितनी देर इंतजार करना होगा?

कस्तूर स्वयं इसी सवाल से जूझ रही थी। वे बोलीं, 'मैं क्या बताऊं, बापू ही आकर बतायेंगे।'

कुछ देर बाद बापू, समय के साथ सिकुड़ते उस केबिन में, कुछ बताने के लिए दाखिल हुए। बच्चे उनकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। मोहनदास कभी बच्चों पर झुंझलाते नहीं थे। वे बोले, 'नो, हम लोग जब तक अंधेरा नहीं हो जाता, जहाज से नहीं उतर सकते।' बच्चे सन्न रह गये। मणिलाल रो पड़ा। मोहनदास बच्चों की नाराजगी की अनदेखी करके कस्तूरबाई को स्थिति समझाने लगे। मोहनदास ने बताया था, जैसे ही शहर में दोनों जहाजों के लंगर डालने की खबर फैली, गोदी में नाराज गोरों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। अब बता रहे हैं चिन्ता की कोई बात नहीं, भीड़ छंट गयी है। लेकिन मेरे मित्र एसकोंब ने कहलाया है कि हालात तुम्हारे खिलाफ हैं इसलिए दिन की रोशनी में उतरना खतरे से खाली नहीं है। वे बहुत बड़े अफसर हैं, सब स्थितियों को समझते हैं।

कस्तूरबाई नाराजगी से बोली, डरबन में कैसे-कैसे लोग रहते हैं! हम लोग आखिर ऐसी बकवास जगह रहने क्यों आये?

अंधेरे में समुद्र का किनारा सुनसान हो जाता है, दुश्मनों से छिपकर निकलना आसान हो जाता है। इस तरह छिपकर निकलना उनके स्वभाव में नहीं था। पर वे परिवार और सहयात्रियों को संकट में नहीं डालना चाहते थे। वे समझते थे, गोरे अपनी नफरत में किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। प्रिटोरिया जाते हुए जब उन्होंने कोच के लीडर को पायदान पर बैठने से मना कर दिया तो सईस यानी लीडर ने उन्हें किस तरह पीटा था, उस अमानवीयता को वे अभी तक नहीं भूले थे।

मोहनदास बच्चों को शांत करने और कस्तूरबाई की गलतहमियां दूर करने में लगे थे कि कैप्टन का बुलावा फिर आ गया। कस्तूरबाई को अच्छा नहीं लगा, झुंझलाकर बोली, 'कैप्टन को क्या मिस्टर गांधी के बिना चैन नहीं पड़ता?' जब तक वाक्य पूरा हुआ, गांधी केबिन के बाहर थे। एक से एक खराब बात कस्तूरबाई के दिमाग में आ रही थी। पता नहीं भाग्य में क्या लिखा है। पर इस बार मोहनदास जल्दी लौट आये थे। आते ही उन्होंने कहा, 'सब कुछ बदल गया है, सबको तुरंत निकलना होगा।'

बच्चों के लिए जेल का दरवाजा जैसे स्वतः खुल गया हो। वे पापा से चिपट गये। लेकिन कस्तूरबाई परेशान हो गयी। पहले जब उनके एक दोस्त ने दिन छिपे जाने का संदेश भेजा था, तब उससे सहमत थे। अब अचानक सब कुछ कैसे बदल गया, कोई चाल तो नहीं? मोहनदास और गोकुलदास सामान निकालकर बाहर रखते जा रहे थे। मोहनदास बताते जा रहे थे, 'दादा अब्दुल्ला के कानूनी सलाहकार मिस्टर लाटन अभी-अभी जहाज पर आये हैं, कंपनी का संदेश लाये हैं। मिस्टर एसकोंब की बात मानने की आपके लिए कोई मजबूरी नहीं। लाटन की राय है कि जहाज पर रुके रहना बेकार है, अंधेरा होने का इंतजार करना और रात होने पर चोर की तरह शहर में प्रवेश करना मूर्खता होगी।'

मोहनदास का बताना जारी था, 'इस समय दंगाइयों की भीड़ भी छंट गयी है इसलिए अब रास्ते में कोई खतरा नहीं है। मैं लाटन की बात से सहमत हूं। डरबन पोर्ट के कमांडर ने एक गाड़ी का प्रबंध कर दिया है। आप सब लोग उस गाड़े से मेरे दोस्त जीवनजी रुस्तमजी के घर चले जायें। वे सज्जन और धनी व्यक्ति हैं। वहां पर सुरक्षित रह सकते हैं।

... क्रमशः अगले अंक में

बोलती तस्वीरें

सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय कार्यसमिति (सेवाग्राम) की बैठक को संबोधित करते संघ अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही

सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय कार्यसमिति (सेवाग्राम) की बैठक में संघ अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही एवं अन्य पदाधिकारी

सर्व सेवा संघ के तत्त्वावधान में पश्चिम बंगाल के बासिरहाट में शांति-यात्रा का नेतृत्व करते संघ के मंत्री श्री चन्दन पाल एवं साथ में यात्री-दल

सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम के कार्यकर्ता श्री जीवन शेंडे के सुपुत्र श्री विनय जीवन शेंडे को 10वीं में 91.20% अंक प्राप्त करने पर सम्मान करते संघ अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, वर्धा के 81वां स्थापना दिवस के अवसर पर वरिष्ठ गांधीवादी डॉ. रामजी सिंह का सम्मान करते आश्रम के अध्यक्ष श्री जयवंत मठकर, मंत्री श्रीराम जाधव एवं अन्य

डॉ. पुष्पा चौरसिया की कविताएं

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

एक दुलारा देश हमारा,
प्यारा हिन्दुस्तान।

दुनिया में बेजोड़ अनोखा,
भारतवर्ष महान,
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान,
हमारा भारतवर्ष महान।

हो मजहब के रिश्ते ऐसे,
घुले दूध में मिश्री जैसे।
नहीं रहे मतभेद हमारा,
आपस में हो भाईचारा।
जेबा पढ़े रामायण-गीता,
सरिता पढ़े कुरान,
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान,
हमारा भारतवर्ष महान।

दंगें की नौबत ना आये,
ईद-दिवाली साथ मनायें।
मिल-जुलकर रहना सब भाई,
इसमें जग की छिपी भलाई।
हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई,
भारत की सन्तान,
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान,
हमारा भारतवर्ष महान।

मंदिर-मस्जिद ना टूटेंगे,
राम-रहीम नहीं रूठेंगे।
इतिहासों का पाठ यही है,
जो तोड़ेंगे वो टूटेंगे।
एक साथ ही चले यहां पर,
आरती और अजान,
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान,
हमारा भारतवर्ष महान।

प्यार की नगरी

खो गयी जो शांति उसको ढूंढ़ लाओ,
प्यार की नगरी यहां फिर से बसाओ।

गर्व की मदिरा-छका मन डोलता है,
धर्म उन्मादी स्वरों में बोलता है।

रेख लक्ष्मण की हवा में खो गयी है,
आजसीता की कहानी सो गयी है।

प्यार की निश्छल धरा की इस डगर में,
जन्म लेती वासना आठों प्रहर में।

देश में गांधी-कबीरा रो रहा है,
नीति का तकिया लगा जग सो रहा है।

जातिगत विष बीज क्यारी में गड़े हैं,
और हमने फूल के सपने गढ़े हैं।

भीड़ में भी भीड़ से अनजान होकर,
जी रहा हर आदमी पहचान खोकर।

है धरातल एक-सा सबका समाना,
मर्म की यह बात ना जाने जमाना।

ध्वंस करती द्वेष की जलती मशालें,
प्रेम से मिल ये मशालें हम बुझालें।

राम यह झगड़ा जगत का देख लेते,
पद-सिंहासन एक क्षण में फेंक देते।

भाई मेरे दो कदम आगे बढ़ाओ,
प्यार की नगरी यहां फिर से बसाओ।

अंगारों पर राख ढंकी है

अंगारों पर राख ढंकी है -
आग कभी भी लग सकती है।

वजनी बातें कुछ ही क्षण की
गांठ न सुलझी उलझे मन की,

नहीं बुझी बातों से ज्वाला
बात बवण्डर बन सकती है -

अंगारों पर राख ढंकी है -
आग कभी भी लग सकती है।

नन्हें मन की बड़ी उड़ानें
त्रिभुवन नाप लिया अनजाने,

कमजोरों की बात करें क्या?
पर्वत से भी ठन सकती है

अंगारों पर राख ढंकी है -
आग कभी भी लग सकती है।

अहं-धर्म सत्ता में बोले,
बिन भूचाल धरा अब डोले,

रक्त-पिपासी तलवारों की
चाह दुबारा जग सकती है।

अंगारों पर राख ढंकी है -
आग कभी भी लग सकती है।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।